

बाल निर्माण की कहानियाँ

१५

बाल-निर्माण की कहानियाँ

(भाग-१५)



लेखिका :
डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनर्मुद्रित सन् २०१४ मूल्य ११.०० रुपये

विषय सूची



साहसी बालिका

गणेश और कुसुम दोनों सहेलियाँ थीं। कक्षा की दूसरी लड़कियों के आने में अभी देर थी। आज वे कुछ पहले ही विद्यालय आ गयी थीं। बैठ कर दोनों कुछ देर तो बातें करती रहीं। फिर कुसुम ने अपने बस्ते से किताब निकालने के लिए उसमें हाथ डाला। उसने तड़प कर तुरंत ही हाथ वापिस खींच लिया। हाथ से खून की धारा बह रही थी।

परंतु गणेश कुमारी की चौकस निगाहों से सचाई छिपी न रह सकी थी। उसने तुरंत अपनी चुन्नी लंबाई से फाड़ी और कुसुम के हाथ पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बंध बाँध दिए। 'अरे! यह क्या करती हो।' कुसुम कहती ही रही। गणेश कुमारी ने उससे बस इतना ही कहा कि खून अभी बंद हुआ जाता है, चुपचाप बैठी रहे।

तब तक दूसरी छात्राएँ भी आने लगी थीं। गणेश कुमारी ने तेजी से बस्ते का मुँह बंद कर दिया। 'साँप' अब वह चिल्लायी। कुसुम के हाथ से बहता खून, बँधी हुई पट्टियाँ और गणेश का चिंतित चेहरा देख उन्हें पूरी बात समझते देर न लगी। सभी वहाँ से तुरंत भाग छूटीं। कुछ ने जाकर अध्यापकों को सूचित किया। गणेश भी अपनी सहेली का हाथ पकड़ कर उसे कमरे से बाहर खींच लायी थी।

अध्यापकों का समूह तेजी से दौड़ा चला आया। कुछ तो कुसुम को तुरंत अस्पताल ले गए। कुछ ने माली आदि के साथ मिलकर सांप को बोतल में बंद कर दिया। बड़ा-सा काला नाग था वह। उसे देखने के लिए भीड़ जुट गयी।

डॉक्टरों ने तुरंत ही उपचार करके कुसुम के शरीर में जहर चढ़ने से बचा लिया। सांप बहुत जहरीला था। यदि तनिक भी देर हो जाती तो उसे बचाना संभव न था। गणेश यदि उसके हाथ में तुरंत बंध न बाँधती तो तत्काल ही कुसुम पर सर्प विष का असर हो जाता।

सांप के रूप में मृत्यु सामने थी, परंतु गणेश तनिक भी उससे न डरी, उल्टे उसने सहेली की रक्षा के लिए प्रयास किया। इस साहस के लिए उसे स्कूल में पुरस्कृत किया गया। राष्ट्रीय स्तर पर भी गणेश कुमारी पुरस्कृत हुई। स्वयं को खतरे में डालकर जो दूसरों की रक्षा करते हैं, ऐसे व्यक्ति निश्चित ही सभी के द्वारा सम्मानीय होते हैं। ऐसे वीर बालकों पर ही समाज और राष्ट्र गर्व करता है।



नेकी का पुरस्कार

दास बाबू गर्मियों की छुट्टियों में परिवार को कहीं न कहीं घुमाने ले जाते थे। दस-पंद्रह दिन सभी घूमते-फिरते, विविध स्थान देखते, मनोरंजन करते और अपनी जानकारियाँ बढ़ाते। इस बार वे गुजरात घूमने निकले। बारह दिन की यात्रा बड़ी सुखद रही, पर लौटते समय एक बड़ी दुर्घटना हो गयी। उनका एक मित्र वहाँ एक कस्बे में रहता था। दास बाबू ने सोचा लौटते में उससे भी मिल लिया जाए। गाड़ी जैसे ही उस छोटे से प्लेटफार्म पर रुकी, उन्होंने सबसे पहले पत्नी तथा बड़े बच्चे को उतरने के लिए कहा। बच्चे की तबियत ठीक नहीं थी, पत्नी उसे सँभालने में लग गयी। दास बाबू ने जल्दी से सामान नीचे पटका। इतने में चढ़ने-उतरने वालों की भीड़ दरवाजे पर धक्का-मुक्की करने लगी। दास बाबू उन्हें हटाते हुए उतरने का प्रयास कर ही रहे थे कि तभी ट्रेन चल पड़ी। अब वे घबरा

गए। 'अरे ट्रेन रोको, ट्रेन रोको, मेरी बच्ची रह गयी वे ट्रेन के पीछे - पीछे दौड़ते हुए चिल्लाए। रेल ने अभी पूरी तरह गति न पकड़ी थी। वे उसके पीछे-पीछे भागते रहे। 'गार्ड बाबू, गार्ड बाबू' वे जोर-जोर से चिल्लाते जा रहे थे, पर उनकी आवाज रेल की सीटी की आवाज में दबकर रह गयी। गार्ड की भी दृष्टि उन पर न पड़ सकी। तब तक ट्रेन भी कुछ आगे बढ़ चली। दास बाबू घबरा उठे। 'पता नहीं मेरी बच्ची कैसे मिलेगी ?' वे मन ही मन सोच रहे थे। तेजी से भागने के कारण उनकी सांस फूल रही थी, चेहरा लाल पड़ गया था और पसीने से नहा उठे थे। दुविधा, चिंता, घबराहट से उनका बुरा हाल था। रेल जब उनकी पहुँच से दूर हो गयी, तो वे कुछ पल हारे-थके ऐसे ही खड़े रहे। तभी सहसा उन्हें लगा कि दूर से कोई पुकार रहा है, 'बाबूजी, बाबूजी।' उन्होंने चौंककर आँखें खोलीं। कोई उनकी ओर भाग कर आता-सा दीखा। उन्होंने उधर ध्यान से देखा। एक आदमी उधर ही आ रहा था। थोड़ी दूरी कम होने पर दिखाई दिया कि उसकी गोद में बच्चा भी है। 'क्या मेरी ही बच्ची है यह ?' दास बाबू ध्यान से देखने लगे। अब तक दोनों की आकृति स्पष्ट होने लगी थी। बच्ची को देखकर वे हर्ष से विह्वल हो उठे। अब तक वह किशोर बालक निकट आ चुका था। 'लीजिए बाबूजी अपनी बच्ची को संभालिए' बालिका को गोद से उतारते हुए वह बोला।

'मैं तुम्हारा कैसे आभार व्यक्त करूँ.......मेरे लिए तुमने चलती रेल से उतर कर कितना बड़ा खतरा मोल लिया है।' भरे हुए गले से दास बाबू बोले।

'बाबूजी यदि ऐसा न करता तो बच्ची न जाने कब आपको मिल पाती और आपको न जाने कितना परेशान होना पड़ता। मुझे तो चलती रेल में चढ़ने-उतरने का थोड़ा-बहुत अभ्यास है भी......।' किशोर कहने लगा।

तभी सहसा उन्हें ध्यान आया कि किशोर के पास सामान तो कुछ है नहीं और ट्रेन जा चुकी थी। उन्होंने पूछा—'तुम्हारे पास कोई सामान नहीं ?'

'मेरी नमकीन की पेटी तो ट्रेन में ही छूट गयी। यदि उसके मोह में फँसता तो बच्ची को न सँभाल पाता।' वह बोला।

'ओह मेरे कारण तुम्हारा इतना बड़ा नुकसान हुआ। ' दास बाबू बोले। उन्होंने रुपए देने के लिए पर्स निकालना चाहा। तभी उन्हें ध्यान आया कि उनके पास दो-चार सौ रुपए ही अधिक होंगे। लौटते में उन्होंने सामान खरीद लिया था। 'इसने तो मेरे लिए अपनी जान की भी बाजी लगा दी। इतने से रुपए देकर मैं इससे उन्ऋण नहीं हो सकता।' वे मन ही मन सोचने लगे। वे उसके माता-पिता, निवास-स्थान आदि के विषय में पूछने लगे। किशोर ने बताया कि उसके माता-पिता का देहांत हो चुका है। वह अकेला है, रेल में नमकीन बेचता है, आज यहाँ तो कल वहाँ। न उसका कोई घर है, न संबंधी।

'तो फिर बेटे!' तुम मेरे साथ चलो। अब तुम थोड़ा बड़ा और समर्थ होने तक मेरे पास ही रहोगे। दास बाबू ने कहा। उन्होंने सोचा कि इसके उपकार से इसी प्रकार थोड़ा-बहुत उऋण हुआ जा सकता है।

किशोर कुछ सोचता हुआ-सा खड़ा रहा। 'तुम्हें मेरी इतनी बात तो माननी ही होगी। मैं तुम्हारी 'सुनने वाला नहीं। तुम्हें वहाँ अच्छा न लगे, तो कभी भी चले आना। '

थोड़े ही दिनों में वह किशोर परिवार से खूब घुलमिल गया। उन्होंने उसे घर पर पढ़ाना भी प्रारंभ कर दिया। दास बाबू की कपड़े की दुकान थी, उसी पर उसे रख लिया। अब उसके इधर-उधर घूमने वाले निराश्रित जीवन का भी अंत हो चुका है। दास बाबू और उनकी पत्नी के पुत्रवत स्नेह का भी वह आभारी है। ◘

पॉलिश

'चांदी-सोने के गहनों पर पॉलिश करा लो........नया बना लो......' गली में एक आदमी आवाज लगा रहा था। सुनयना ने दरवाजा खोलकर देखा। एक सज्जन-सा दीखने वाला व्यक्ति साइकिल पर चढ़कर आवाज लगा रहा था। उसे देखते ही कहने लगा— 'बहिन जी,' सोने-चांदी के गहनों पर बहुत सस्ते में पॉलिश करा लीजिए। बिलकुल नए जैसे दीखेंगे। आप पहचान नहीं पाएँगी कि नए हैं या पुराने।'

'कितने रुपए लोगे ?' सुनयना ने पूछा—

'चांदी के दो रुपए और सोने के आभूषण के दस रुपए।' वह व्यक्ति बोला।

सुनयना सोचने लगी कि दो रुपए में चाँदी का गहना चमक जाए, तो क्या बुरा है ? उसने अभी एक महीने पहले चाँदी के कड़े खरीदे थे। महीने भर तक लगातार पहने रहने के कारण वे कुछ काले से पड़ गए थे, उनकी चमक पहले जैसी न रह गयी थी। आठ-दस दिन बाद ही सुनयना को एक उत्सव में सहेली के यहाँ जाना था। वह सोचने लगी कि कड़ों पर पॉलिश करा लूँ, तो वहाँ नए पहनना अच्छा लगेगा।'

फेरी वाले की आवाज सुनकर आस-पड़ौस के घरों से दो-चार महिलाएँ और बाहर निकल आयी थीं। फेरी वाला उनसे भी कह रहा था 'बहिन जी, गहने चमक वालो, नए बनवा लो।'

महिलाएँ अभी विचार ही कर रही थीं कि उस व्यक्ति की निगाह एक महिला के हाथ की अँगूठी पर गयी। वह बोला— 'बहिन जी लाइए यह अँगूठी मुझे उतारकर दीजिए। मैं अभी इसे बिलकुल नयी जैसी बना देता हूँ। आपके इसके पैसे भी नहीं लूँगा।'

फिर यदि आपसे काम पसंद आए तो कराइए नहीं तो कोई जबरदस्ती नहीं।'

महिला ने हाथ की अँगूठी उतार कर दे दी। उस व्यक्ति ने साइकिल पर रखी एक छोटी-सी पेटी उतारी, एक घर के बरामदे में सामान रखकर वह बैठ गया। अँगूठी सर्फ में धोयी गयी, खूब रगड़ी गयी फिर रसायन में डालकर कपड़े से चमकायी गयी। कुछ ही देर में वह महिला के हाथ पर रखी थी। एकदम नयी जैसी दप-दप करती, चाँदी-सी किरणें बिखेरती।

'देखा बहिनजी आपने, कैसी चमक गयी यह। गहने चमकवाने में पैसे भी कितने कम लगे। बस दो रुपए। इतने रुपए तो छोटी-मोटी चीजों में दिन में यों ही खरच हो जाते हैं।' फेरी वाला बोला।

''दो रुपए की तो कोई बात नहीं महिलाएँ बोलीं। वे अँगूठी की चमक देखकर ही खुश हो गयी थीं। एक महिला अपनी चाँदी की जंजीर ले आयी। सुनयना भी अंदर जाकर अपने कड़े निकाल लायी।

पहले वाली क्रिया फिर दुहरायी गयी। थोड़ी देर में एक के हाथ में चमकती हुई जंजीर रखी थी और दूसरी के हाथ में कड़े। दोनों ने फेरी वाले को खुशी-खुशी दो-दो रुपए दिए, साथ ही फिर आते रहने के लिए कह दिया।

सुनयना सहेली के यहाँ गयी तो उसके नए-नए कड़े अलग ही चमक रहे थे। उनकी डिजायन तो बारीक कटिंग की थी ही। सहेलियों ने कड़ों की प्रशंसा की, सुनयना मन ही मन हँस रही थी, 'दो रुपयों का कमाल है यह।'

दुर्घटना होते देर नहीं लगती। सुनयना के पति ऑफिस जाते समय स्कूटर की चपेट में आ गए। उनकी हड्डी टूट गयी और अस्पताल में रहना पड़ा। दवा में बहुत पैसा उठ गया। उन्होंने नौकरी दो-तीन महीने पहले ही प्रारंभ की थी। नौकरी पर न जाने से वेतन

मिलने का प्रश्न ही नहीं था। रुपयों की जरूरत होने पर सुनयना सोचने लगी कि अब क्या किया जाए? महिलाओं के आभूषण केवल शोभा बढ़ाने के साधन ही नहीं होते अपितु सद्गृहणियाँ विपत्ति आने पर इनका सदुपयोग किया करती हैं। सुनयना का ध्यान भी अपने आभूषणों पर गया। वह कड़े और एक-दो चीज लेकर घर से निकली। कड़े उसने दो महीने पहले ही खरीदे थे, इसलिए सोचा कि उसी दुकान पर चला जाए, जिससे खरीदे थे। जितने में लिए थे, थोड़े-बहुत कम होकर रुपए मिल जाएँगे।

सुनयना ने दुकानदार को सबसे पहले कड़े ही पकड़ाए। उसने उन्हें तौला और रुपए सुनयना के हाथ पर रख दिए। सुनयना ने जितने में लिए थे उससे डेढ़ सौ रुपए कम। वह आश्चर्य में पड़ गयी। दो मास में वही दुकानदार अपनी चीज को वापिस डेढ़ सौ रुपए कम देकर कैसे ले रहा है? बीस-तीस रुपए कम होने की बात तो समझ में आती है, पर पूरे डेढ़ सौ रुपए कम हो जाएँ यह भला कैसे संभव है? फिर सोने-चाँदी की चीजें खरीदने की उपयोगिता ही क्या रही? लोग इन्हें खरीदते ही इसलिए हैं कि समय के साथ इनका मूल्य बढ़ता रहे।

सुनयना ने कड़े खरीदते समय जो पर्चा दुकान से लिया था, उसे निकाल कर दुकानदार को दिखाया। उस पर वजन आदि का भी पूरा विवरण लिखा हुआ था। दुकानदार भी चक्कर में कि पर्चे पर जितना वजन लिखा है, तौल में उससे कम क्यों आ रहा है? 'मुझसे इतनी बड़ी भूल कैसे हो गयी? वह मन ही मन सोचने लगा। उसने काँटे पर रखकर दुबारा कड़े तौले। उसका तौल ठीक था। अब उसने सुनयना से कहा—'बहिनजी! ये वजन में दो तोले कम हैं।'

'वाह दो महीने में दो तोले कैसे कम हो जाएँगे?' सुनयना बोली। फिर वह आक्रोश से कहने लगी—'हमें तो कुछ पता नहीं जी। पहले भी आपने तौले थे और अब भी आप ही तौल रहे हैं।'

यह तो सीधा-साधा दुकानदार पर आक्षेप था। वह कहने लगा—'बहिन जी!' हमारी इतनी बड़ी प्रतिष्ठित दुकान है। हम इस प्रकार का गलत काम नहीं करते। मुझे स्वयं भी आश्चर्य है कि वजन इतना कम कैसे हो गया?' फिर वह कुछ सोचते हुए बोला—'ये अभी भी इतने चमक कैसे रहे हैं?' आपने इन पर पॉलिश भी करायी है क्या?'

'हाँ पॉलिश तो कराई।' सुनयना ने कहा और फेरी वाले से पॉलिश कराने की पूरी बात बता दी।

दुकानदार कहने लगा—'बस! अब मैं पूरी बात समझ गया। यह सब पॉलिश वाले की ही कृपा है। उसने आपसे पॉलिश करने के दो नहीं डेढ़ सौ रुपए वसूल किए हैं।'

सुनयना का सिर चकराने लगा। ऐसा कैसे हो गया? आँखों के सामने ही तो उसने पॉलिश की थी। दुकानदार ने बताया कि फेरी वाले ने जिस एसिड में कड़ों को डाला था, दो तोले चाँदी उसी में घुल गयी। अपने आभूषण कभी अपरिचित व्यक्ति को पकड़ाने भी नहीं चाहिए। सफाई तो घर कर लेनी चाहिए।

सुनयना ने सदैव के लिए सबक ले लिया, पर हानि उठाकर।



परिचय के क्षण

रेल पूरी गति से दौड़ी जा रही थी और जयंत का मन उससे भी तेजी से दौड़ रहा था। मित्रों से मिलने को उसका मन व्याकुल हो रहा था। वह कितने गर्व से उनके बीच में सिर उठाकर जाएगा। उसके पूरे समूह में बस उसी की प्रथम श्रेणी थी। वह सब पर अपना दबदबा रखेगा। माँ-पिताजी ने भी अपनी कही बात पूरी की थी। हाईस्कूल में प्रथम श्रेणी में आने के उपलक्ष में उसे घड़ी दी थी, सूट

सिलवाया था। वह शान से कल ही नया सूट पहनकर, चमचमाती नयी घड़ी बाँधकर कॉलेज जाएगा। खिड़की के सहारे बैठा, बाहर झाँकता जयंत और भी न जाने क्या-क्या सोचता जा रहा था। तभी सामने बैठे उसके पिताजी ने उसे पुकार कर, उसके हम उम्र एक लड़के को दिखाते हुए कहा—'यह भी तुम्हारे कॉलेज में ही दाखिल होगा।'

जयंत ने एक उड़ती-सी नजर उस किशोर पर डाली और फिर खिड़की से बाहर देखने लगा। पहली ही दृष्टि में उसे वह बिलकुल भी अच्छा न लगा। गाँव का छोकरा, छोटे-छोटे बेतरतीव बाल, झोला हाथ में पकड़े। वह मन ही मन सोचने लगा—'यह गँवार उसके दोस्तों के बीच खड़ा हो जाए तो नौकर जैसा लगेगा।'

ट्रेन की आवाज में दूर से कुछ सुनायी न देता था, इसलिए पिताजी चुप हो गए थे। परंतु वे उस किशोर और उसके साथ आए व्यक्ति से जब-तब बात कर लेते थे। जयंत सोच रहा था कि पिताजी का तो स्वभाव ही ऐसा है कि चाहे किसी से मित्रता करने लगते हैं, यह भी नहीं देखते कि अपने स्तर का है या नहीं।

गाड़ी प्लेट फार्म पर रुकी तो जयंत और उसके पिता भीड़ के धक्के से बचने के लिए जल्दी से उतर गए। रास्ते में पिताजी ने उस लड़के कि विषय में जयंत को फिर बताया, पर वह सुनी-अनसुनी कर गया।

जयंत के पिता का स्थानांतरण हो गया था। वहाँ नयी जगह उसकी पढ़ाई की व्यवस्था न थी। अतएव वे पुराने शहर के उसी कॉलेज में उसका प्रवेश कराने आए थे। उसे छात्रावास में भर्ती कर, प्रवेश की सारी कार्यवाही पूरी कर वे अगले दिन ही लौट गए।

छात्रावास में प्रत्येक कमरे में दो छात्र थे। जयंत ने जब अपने कक्ष साथी को देखा, तो उपेक्षा से मुँह फिरा लिया। यह तो वही ट्रेन

वाला लड़का था। जयंत मन ही मन बड़बड़ाया—'एक यही रह गया था मेरे साथ रहने के लिए।'

उस लड़के ने जयंत को देखकर ही दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—'मुझे आपके साथ रहने से खुशी होगी। मेरा नाम केदार है।'

जयंत कुछ न बोला—'चुपचाप कमरे की आलमारी में सामान रखता रहा। केदार ने उससे बात करने की कोशिश भी की, पर वह ठीक से बोला ही नहीं। हाँ-हाँ भर कहता रहा। सामान रखते ही वह बाहर निकल गया। दूसरे कमरों में जा-जाकर लड़कों से परिचय करने लगा। सबसे बुरा, गँवार उसे अपना साथी ही लगा।'

गुण और दोष दूसरे में तो होते ही हैं, पर हमारी दृष्टि में अधिक होते हैं। जिसके प्रति हमारी धारणा अच्छी होती है, तो उसमें गुण दिखायी देते हैं, जिसके प्रति बुरी धारणा होती है, तो उसमें दोष दिखायी देते हैं। जयंत केदार के हर काम में बुराई खोज लेता है। उसका उठना-बैठना, रहन-सहन सब उसे अखरते। थोड़े ही दिनों में दूसरे लड़कों से उसने अच्छी मित्रता कर ली थी। वह अधिकांशत: उन्हीं के कमरों में रहता, उन्हीं के साथ घूमता-फिरता, खाता-पीता। जयंत को रात में देर तक जगने और सुबह देर तक सोते रहने की आदत थी, तो केदार को रात में जल्दी सोने और प्रात:काल जल्दी उठकर पढ़ने की। जैसे ही कॉलेज में पढ़ाई प्रारंभ हुई, पुस्तकें आयीं-केदार पढ़ाई में लग गया। वह शाम को पढ़ता तो जयंत और उसके साथी कमरे में शोर करते, सुबह जल्दी उठकर पढ़ता, तो जयंत बिजली बंद करने के लिए चिल्लाता। केदार लैंप से पढ़ता तो 'मच्छर आते हैं कहकर झुँझलाता। उसका लक्ष्य बस एक था, केदार तंग होकर के स्वयं ही इस कमरे से चला जाए। वह उसे तंग करने का कोई न कोई बहाना खोजता ही रहता था। जयंत और उसके

साथी उसकी उपेक्षा करते। दूसरे लड़के जहाँ झुण्डों में खड़े होकर गपशप करते, ठहाके लगाते, वहाँ वह चुपचाप बालकनी में खड़ा रहता। बात यहीं तक सीमित न थी। जयंत जब-तब छात्रावास के अधीक्षक से उसकी शिकायत भी कर देता और डाँट पड़वाता। केदार का लटका चेहरा उसे खुशी देता। एक बार तो उसने उस पर चोरी का झूठा आरोप तक लगा दिया। जयंत और उसके साथी उसे किताबी कीड़ा' कह कर चिढ़ाते, पर वह भी न जाने कैसा था, सब कुछ सुन-सहनकर भी उनके विरुद्ध मुँह न खोलता। जबकि वे सब चाहते थे कि केदार बोले और लड़ाई का मौका मिले।

उस कॉलेज की यह परिपाटी थी कि प्रवेश के दो महीने बाद ही छात्र संघ के चुनाव होते थे। अध्यक्ष का चयन शैक्षणिक योग्यता के आधार पर होता था। जिस छात्र के हाईस्कूल में सर्वाधिक अंक होते थे, वही दो वर्ष के लिए अध्यक्ष बन जाता था। साथियों से पता करने पर विदित हुआ कि उनमें जयंत के ही सबसे अधिक अंक थे। उसने अपने मन में स्वयं को अध्यक्ष मान लिया था।

चुनाव वाले दिन जयंत नया सूट पहनकर शान से कॉलेज गया। वह मन में अपनी प्रशंसा और सत्कार की कल्पना कर बड़ा ही प्रसन्न हो रहा था। प्रार्थना के बाद प्राचार्य महोदय ने छात्र संघ के अध्यक्ष पद के लिए केदार का नाम लेते हुए उसे मंच पर बुलाया। प्रथम श्रेणी के साथ ही बोर्ड में उसका द्वितीय स्थान है, यह सूचना जब उन्होंने दी, तो सभी ने जोर-जोर से तालियाँ बजायीं। केदार की प्राचार्य ने बहुत प्रशंसा की और कहा कि दूसरे स्कूल से, दूसरे स्थान से आए इस छात्र ने अल्प समय में ही अपने अध्यापकों को भी प्रभावित किया है, अच्छे व्यवहार से उनका मन जीत लिया है। ऐसे योग्य छात्र के निर्देशन में छात्र संघ कॉलेज के हित की निरंतर चेष्टा करेगा। केदार की सादगी की भी प्राचार्य ने प्रशंसा की। उन्होंने कहा

कि सादगी हमें एकाग्रता, मनोबल आत्मविश्वास और दृढ़ता देती है और ये गुण जीवन की प्रगति के मार्ग पर निरंतर बढ़ाते हैं। जयंत के मन में उनके शब्द आग लगा रहे थे, पर वह चुपचाप खड़ा था। वह घर जाकर जरूर उसे सताने की तरकीबें सोच रहा था। उसे यह भी पता था कि वार्डन उसके पक्ष में रहते हैं। उन्हीं से वह केदार की झूठी शिकायतें करने की बात सोच रहा था।

उस दिन कमरे में जाकर केदार को बधाई देना तो दूर, जयंत उसके सामने भी न पड़ा। वह मित्रों के कमरे में बैठा शोर करता रहा। यह वही समूह था, जो केदार की प्रायः उपेक्षा करता था। इस समुदाय के अधिकांश लड़के घूमने और मौज मनाने में लगे रहते थे। परीक्षा से दो-तीन दिन पहले ही वे किताबें उलटते थे।

जयंत और उसके साथियों का केदार के प्रति उपेक्षा भाव, षड्यंत्र दिन-पर-दिन बढ़ते ही जा रहे थे और बढ़ते ही जाते यदि बीच में एक दुर्घटना न घट जाती।

दशहरे की छुट्टियों हुईं। सभी घर जाने की खुशी में तैयारी कर रहे थे। जयंत भी सुबह से अपनी तैयारी में जुटा था, पर उसे अचानक ही कँपकँपी आने लगी। आधे घंटे में ही उसका पूरा बदन तपने लगा। वह चुपचाप कंबल ओढ़े चारपाई पर लेटा था। उसके मित्र ढूँढ़ते हुए तेजी से उस कमरे में यह कहते हुए आए 'तुझे हमने सब जगह ढूँढ़ लिया और तू यहाँ है। स्टेशन चलने के लिए कितनी देर हो रही है।'

परंतु जयंत को इस प्रकार लेटे देखकर वे ठिठक गए। एक ने माथे पर हाथ रखा और बोला—'अरे! इसे तो तेज बुखार है। यह तो आज न चल पाएगा।'

दूसरा बोला—'रेल का समय हो रहा है। तुम्हें इस स्थिति में छोड़कर जाने को मन तो नहीं करता, परंतु पिताजी स्टेशन पर लेने आ जाएँगे, न पहुँचने पर चिंता करेंगे इसलिए जाना ही पड़ेगा।'

तीसरा बोला—'हम वार्डन को सूचित किए जाते हैं। अभी आकर तुम्हारी देखभाल कर लेंगे। घबराने की कोई बात नहीं, जल्दी ठीक हो जाओगे।'

चौथा बोला—'घर जाकर हमें पत्र जरूर डालना।'

'बुरा न मानना। रेल का समय हो गया है। हमें जाना ही पड़ेगा।' वे सभी एक साथ बोले और कमरे से बाहर हो गए।

जयंत के मन को बहुत ठेस लगी। वह तो सोच रहा था कि उसके मित्र उसके कारण रुक जाएँगे। क्रोध और भावुकता में वह रोने लगा। बुखार भी तेजी पर था। उसे पता ही न लगा कि वह कब अचेत हो गया।

जयंत को होश आया तो उसने देखा कि सामने डॉक्टर खड़ा है और साथ में केदार। वह डॉक्टर से दवा के विषय में पूरी जानकारी ले रहा है। डॉक्टर के जाने के बाद केदार निरंतर उसकी सेवा में जुटा रहा। कभी सिर पर बर्फ की पट्टी रखता, कभी हाथ-पैर झाड़ता, कभी दवा देता। बहुत देर बाद जब बुखार कम हुआ, जयंत चैतन्य हुआ, तो उसने पूछा—'क्या समय है?'

केदार ने बताया कि शाम हो चुकी है। 'तुम घर नहीं गए?' उसने पूछा।

'तुम ठीक हो जाओगे, तो कल साथ-साथ चलेंगे।' केदार कह रहा था।

'ओह! चले जाते। तुमने एक दिन बेकार किया। घर पर तुम्हारी प्रतीक्षा होती होगी।' जयंत ने कहा।

केदार ने कुछ न कहा, पर वह निरंतर जयंत की सेवा-सुश्रूसा करता रहा। दूसरे दिन बुखार न था। डॉक्टर ने जयंत को घर ले जाने की अनुमति दे दी थी। केदार उसे अपने साथ-साथ ले गया। उसका सामान उठाकर, हाथ पकड़कर सुविधापूर्वक रेल में उसे बैठाया।

इतना ही नहीं उसने जयंत को उसके घर तक भी पहुँचाया। केदार का घर तो पहले ही था, पर वह उस स्टेशन पर उतरा ही नहीं। जयंत के जोर देने पर उसने कह दिया कि वह अभी कमजोर है, उसे घर तक छोड़ना जरूरी है।

जयंत ग्लानि और उल्लास के बीच ऐसी स्थिति में था, जिसके लिए उसके पास कोई अभिव्यक्ति नहीं थी। थोड़ी देर तक वह ठगा-सा केदार का मुँह देखता रहा। फिर धीरे से उसका हाथ पकड़कर आँखों से लगा लिया। ◘

नये कदम नयी राह

मध्यावकाश का समय था। अधिकांश विद्यार्थी खाने-पीने के लिए कैंटीन की ओर दौड़ गए थे। बागीश के मित्र उससे भी चलने की जिद कर रहे थे, पर वह बहाना बना कर उन्हें टाल रहा था। सुधीर बोला—तुम तो प्रतिदिन ही कोई न कोई बहाना बनाते हो। अरे, तुम खिलाना नहीं, चलो खा तो लो हमारे साथ।

सभी के आग्रह पर बागीश चुपचाप बाहर आ गया। अधिकांश लड़के इस समय खाते-पीते थे, पर उसे मुँह छिपाना पड़ता था। वह अपने घर की स्थिति जानता था। उसकी माँ उस पर अधिक पैसे खर्च नहीं कर सकती थी।

पढ़ने वाले वे तीन भाई बहिन थे। फीस सभी की माफ थी, परंतु स्कूल की ड्रैस और दूसरे कामों में तो पैसा खर्च होता ही था। माँ की बहुत इच्छा थी कि बागीश अच्छी तरह पढ़ जाए इसलिए उन्होंने उसे अच्छे स्कूल में डाला था। स्कूल में आए दिन खर्चे होते-कभी बच्चों को घुमाने ले जाया जा रहा है, कभी कोई स्टॉल लग रहा है, तो कभी कोई चंदा जमा किया जा रहा है। बागीश को हर बार अपना हाथ पीछे खींचना पड़ता, सबसे मुँह छिपाना

पड़ता। आज उसने निश्चय किया कि वह भी छोटा-मोटा कोई न कोई काम अवश्य ढूँढ़ेगा, जिससे उसके ये छोटे-छोटे खर्चे पूरे हो सकें।

बागीश बहुत देर तक सोचता रहा कि क्या कार्य किया जाए। सहसा ही उसे ध्यान आया कि मौहल्ले में सुबह-सुबह अखबार बाँटने उसके जैसा एक लड़का आया करता है, बस फिर क्या था, वह दूसरे दिन प्रात:काल ही घर से बाहर निकल गया और अखबार वाले का इंतजार करने लगा। वह बहुत जल्दी में था फिर भी उसने उसे रोककर पूछ ही लिया कि वह कहाँ से अखबार लाता है और क्या उसे भी यह कार्य मिल सकेगा? लड़के ने कहा तुम मेरे बड़े भाई से मिल लो, उन्होंने ही मुझे यह काम दिलाया है, शायद तुम्हारी कुछ सहायता कर सकें। 'कल वह ही अखबार बाँटने आएँगे, मिल लेना।' उसने कहा।

अब बागीश दूसरे दिन की आकुलता से प्रतीक्षा करने लगा। जब अखबार वाले का भाई आया तो उसने उससे भी यह बात कही। वह अपने छोटे भाई के द्वारा सब कुछ जान चुका था। इसलिए बोला—'मै अखबार वाजी ऐजेंसी ही जा रहा हूँ। चलो तुम्हारी बात करा देता हूँ।'

बागीश उसी की साइकिल पर पीछे बैठकर चल दिया। यद्यपि ऐजेंसी वाले को नए हॉकर की जरूरत न थी, परंतु वे सहृदय थे। 'यह पढ़ने वाला बच्चा है और पढ़ाई में सहायता पाने के लिए काम करना चाहता है' यह सोचकर उन्होंने उसे रख लिया और अगले दिन से ही काम पर आने के लिए कहा।

पिताजी के पास साइकिल थी ही, बस बागीश का काम बन गया। घर जाकर उसने माँ और पिताजी को भी यह सूचना दे दी। दूसरे ही दिन वह काम पर निकल गया और एक-डेढ़ घंटे काम करके वापिस आ गया।

महीना समाप्त होने पर जब उसे तीस रुपए दिए गए, तो उसकी आँखें खुशी से चमक उठीं। स्वावलम्बन में कितना सुख है, यह उसने पहली बार जाना। उसने झट से अपने छोटे भाई-बहिनों और मित्रों के लिए टॉफी खरीदीं। उसकी पहली कमाई जो थी। आज तो वह अपने प्रियजनों को कुछ न कुछ देना चाहता था। शेष बचे सभी रुपए उसने घर में जाकर माँ को दे दिए।

अब बागीश स्कूल में भी उचित स्थान पर आवश्यकता होने पर थोड़ा-बहुत धन व्यय करने लगा था। उसके मित्र इस परिवर्तन पर चकित थे। इसके बाद भी बागीश ने अपना यह स्वावलम्बन बनाए रखा। 

वीर बालक

देवनाथ अपने माता-पिता का अकेला लड़का था। दादी और माँ की गोद में लोरी और कहानी सुनते हुए उसका बचपन बीता था। उसकी माँ उसे साहस, शौर्य की कहानियाँ सुनातीं और दादी प्रायः प्राचीन धर्म ग्रंथों की। परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो बचपन से ही उसमें वीरता के संस्कार जमे तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा-भावना। विविध ऐतिहासिक, पौराणिक पात्रों ने उसके व्यक्तित्व को साहस, कर्त्तव्यनिष्ठा, नैतिकता आदि के संस्कारों से सुदृढ़ बनाया। माँ की गोद ही बच्चे के संस्कारों की सबसे बड़ी पाठशाला है।

देवनाथ का प्रखर व्यक्तित्व अल्पायु से ही दिखलायी देने लगा था, अब तो वह १४ वर्ष का सुंदर, सद्गुणी किशोर था। वह अपने अच्छे स्वभाव और गुणों के कारण माता-पिता का ही नहीं स्कूल और पास-पड़ौस में भी सभी का लाड़ला था।

एक रात की बात है। सभी गहरी नींद में सोए थे। देवनाथ को कुछ गरमी-सी लग रही थी, अतएव वह ऊपर छत पर सोया था। आधी रात को सहसा ही उसकी आँख खुली। उसे कुछ शोर-सा सुनाई दे रहा था। उसने नीचे झाँक कर देखा तो एक पल के लिए तो वह भी जड़-सा हो गया। माता-पिता के हाथ-पैर बँधे हुए थे और वे एक कोने में पढ़े थे। घर में बारह-चौदह आदमी इधर-उधर घूम रहे थे। वे हर कमरे से सामान ला-लाकर इकट्ठा कर रहे थे। देवनाथ को समझते देर न लगी कि यह डाकू दल है और गाँव के अनेक घरों को आज लूट कर ले जाएगा। 'हम सभी दिन-रात खेतों में कठोर परिश्रम करके तो जैसे-तैसे कमाते हैं और ये हमारी वर्षों की खून-पसीने की कमायी उठाकर ले जाएँगे।' यह बात सोचकर ही देवनाथ का खून खौल उठा। 'अन्याय और आतातायी से डरना भी अपराध है, अन्याय को चुपचाप सहने से ही अन्यायी को बल मिलता है। मैं इनका सामना करूँगा।' ऐसा मन ही मन सोचकर देवनाथ चुपचाप नीचे उतरा। डाकू अनेक थे और वह अकेला था इसलिए उसने युक्ति पूर्वक कार्य करना उचित समझा। वह अँधेरे में छिपते हुए घर से बाहर निकला। बरामदे में पड़ी कुल्हाड़ी उसने उठा ली और बाहर पेड़ों के झुरमुट में छिपकर खड़ा हो गया। डाकू एक-एक करके अंदर से सामान लेकर निकल रहे थे। देवनाथ ने कुल्हाड़ी से उन पर हमला किया। अँधेरे के कारण डाकू उसे ठीक से देख न पाए। बहादुरी से उसने डाकुओं का सामना करते हुए दो डाकुओं को बुरी तरह घायल कर दिया। डाकुओं ने सोचा 'गाँव वाले जग गए हैं, अब वे घेर लिए जाएँगे।' अतएव वे सारा सामान वहीं छोड़कर भागने लगे। भागते हुए डाकुओं में से भी देवनाथ ने एक को पकड़ लिया। उसे चोट लग गयी थी, पर उसने अपनी परवाह नहीं की। अब तक गाँव में जाग पड़ गयी थी। ग्रामीण हंडे और लालटेन लेकर

अपने घरों से निकल पड़े। पता लगा कि उस रात डाकुओं ने दस-घरों में डकैती डाली थी, परंतु देवनाथ की बुद्धिमानी से वे अपने साथ थोड़ा-सा ही सामान ले जा पाए थे।

देवनाथ के साहस की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उसी के कारण अनेकों की रक्षा हुई थी। इतना ही नहीं देवनाथ ने जिस डाकू को पकड़ा था, उसे पीट-पीट कर पुलिस ने सारा भेद उगलवा लिया था। घोर संकट की स्थिति में भी साहस तथा बुद्धिमत्ता से कार्य किया जाये तो देवनाथ जैसा छोटा किशोर भी अनेक की रक्षा कर सकता है। उस आतंक मचाने वाले डाकू दल के समाप्त हो जाने से अब ग्रामीण राहत का अनुभव करते और चैन की नींद सोते हैं। सच है, साहस और परोपकार के कार्य के लिए आयु नहीं, संस्कार ही सहायक होते हैं। तभी तो अल्पायु बच्चे भी वह कार्य कर देते हैं, जिन्हें बड़े भी नहीं कर पाते।



धन का सदुपयोग

'सज्जन व्यक्ति अमीरी में भी फल से लदे वृक्षों जैसे विनम्र रहते हैं।' यह वाक्य स्वर्णलता पर पूरी तरह घटित होता था। उनके पास बहुत-सी संपत्ति थी, परिवार में सुख-शांति थी, परंतु किसी को भी अभिमान न था। पति और बच्चे भी सदाचारी और संस्कारी थे। अपने बच्चों में स्वर्णलता ने विशेष रूप से यह गुण विकसित किया था कि वे अहंकारी न बनें, दूसरों की सहायता करें, उनके प्रति सहृदयता का व्यवहार करें।

पड़ौस में ही एक परिवार रहता था, जो प्रतिदिन कमाता था, तब खाता था। स्वर्णलता अपने इस पड़ौसी का भी पूरा ध्यान रखती। उनका बच्चा प्रायः उनके यहाँ आ भी जाता था। पिछले एक सप्ताह

·से वह नहीं आया तो स्वर्णलता का ध्यान उधर गया। एक दिन उसके घर से रोने आवाज भी आ रही थी। स्वर्णलता से न रहा गया और वह कारण जानने लिए आतुर हो उठी। उन्होंने अपने बेटे को भेजकर बच्चे को बुलवाया। उसने रोते हुए बताया कि पिताजी बहुत बीमार है। वे तुरंत ही पड़ौसी के यहाँ पहुँची। उस घर की स्थिति देखकर समझ गयी कि बीमारी का बड़ा कारण गरीबी है। पैसों के अभाव में न ठीक से दवा मिल पा रही है और न पथ्य। वे पड़ौसिन को ढाढ़स बंधाने लगीं 'बहिन!' तुम चिंता न करो। हम कल ही अपने परिवार के डॉक्टर को बुलाकर दिखा देंगे।

पड़ौसिन रोते हुए बताने लगी कि उसके पास डॉक्टर की ऊँची फीस और दवा के लिए भी पैसे नहीं है। उसने अपने चाँदी के दो कंगन उतार कर उनके सामने रख दिए। वह मना करने पर भी न मानी तो स्वर्णलता ने वे कंगन अपने पर्स में रख लिए। दूसरे ही दिन उनका डॉक्टर रोगी को देखने जा पहुँचा। दवा, फल सभी सामान स्वर्णलता ने अपने नौकर से भिजवा दिया। उनका बेटा भी प्रतिदिन जाकर रोगी की खबर ले आता था। वे स्वयं भी वहाँ दुबारा हो आयी ॅऔर गृहिणी को पूरा आश्वासन दे आयीं कि उसके पैसों से ही दवा-फल आदि भिजवा रही हैं, वह बिलकुल भी चिंता न करे।,

एक मास के अंदर रोगी पूरी तरह स्वस्थ हो गया। अभी कमजोरी शेष थी। वह रिक्शा चला पाने में असमर्थ था। स्वर्णलता ने पति से कहकर उसे कुछ दिन के लिए कारखाने में नौकरी दिलवा दी। उन्होंने पड़ौसिन को अपने घर बुलाया और उसके कंगन भी वापस कर दिए। वह किसी प्रकार भी लेने के लिए तैयार नहीं थी। 'मैं तुम्हें बहिन समझकर अपनी ओर से उपहार दे रही हूँ, यही समझकर रख लो। तुम नहीं लोगी तो मुझे बहुत बुरा लगेगा। मेरा मन

रखने के लिए ही ले लो। समय पर सहायता करना पड़ौसी का धर्म है, मैंने बस इसी का निर्वाह किया है।' वे बोलीं। उनके अनुग्रह की रक्षा करने के लिए पड़ौसिन को वे लेने ही पड़े।

आज नगरों में यह प्रचलन बढ़ रहा है कि पड़ौसी से हमें कोई मतलब ही नहीं उसके सुख-दु:,ख की ओर से हम पीठ फिराकर रहते हैं। हमारा स्वार्थ प्रबल और अपनत्व की सीमाएँ संकीर्ण हो गयीं है। ऐसे में स्वर्णलता जैसे व्यक्ति प्रेरणा देते और सही दिशा दिखलाते हैं। यदि हम दूसरे के दु:ख में दु:खी होना सीख लें तो मानवता के विनाश के लिए बढ़ता चला आ रहा संकट बहुत कुछ दूर हो जाए। 

आज नहीं तो कल

मलय छुट्टियों में अपने मामाजी के पास गया। वे पुलिस अधिकारी थे और उन दिनों नैनीताल में थे। वहाँ जाकर मलय को बहुत अच्छा लगा। कभी नैनी झील में नाव की सैर, तो कभी पहाड़ों पर चढ़ना, सारा दिन ऐसे ही ममेरे भाई समीर के साथ घूमते हुए निकल जाता। शाम के समय प्राय: मामाजी भी उनके साथ घूमने निकलते। दोनों बच्चों को पता था कि उनका निशाना बहुत अच्छा है। अतएव वे जंगल में जा रहे होते, या सुनसान पहाड़ पर चढ़ रहे होते, तो वे उनसे निशाना लगाने के लिए आग्रह करते। कभी समीर कहता, 'पिताजी, पेड़ के उस कोटर पर निशाना लगाइए। तो कभी मलय आग्रह करता 'मामाजी, उस सबसे ऊपर वाले फल का निशाना लगाइए।' दोनों बच्चों का मन रखने के लिए नकली कारतूसों से वह निशाना साधते। वह सही स्थान पर बैठता और दोनों ताली बजाते।

एक दिन मलय और समीर ने विचार किया कि अभ्यास करें तो वे भी निशाना साध सकते हैं। दूसरे ही दिन समीर बाजार से दो

गुलेल खरीद लाया। दोनों सुबह होते ही बस्ती से दूर चले जाते और गुलेल में कंकड़-पत्थर रख-रखकर निशाना लगाने का प्रयास करते। जिसका निशाना तनिक भी सही लगता, वह खुशी से गाता और उछलता। धीरे-धीरे उन्होंने सही निशाना लगाने का कुछ अभ्यास भी कर लिया। मलय को यह खेल बड़ा अच्छा लगा। छुट्टियाँ समाप्त हुई तो वह घर जाते समय अपनी गुलेल भी ले गया।

मलय को गुलेल चलाने का कुछ ऐसा शौक चढ़ा कि वह प्रतिदिन उसे जरूर चलाता। उसके घर के आस-पास तो घनी बस्ती थी, पेड़ों का नाम भी न था। अतएव घर में किस पर अभ्यास करे ? एक-दो बार छत पर बैठी चिड़िया या गिलहरी पर ही उसने गुलेल चला दी। उन बेचारी को लहुलुहान होना पड़ा। मलय दु:खी होने की अपेक्षा इस बात पर प्रसन्न होता कि उसका निशाना सही स्थान पर लगा था। उसकी माँ को वह करतूत जब पता लगी, तो उन्होंने मलय को बहुत डांटा कि वह प्राणियों को क्यों सताता है?

मलय पर इसका इतना असर हुआ कि उसने घर में गुलेल चलाना छोड़ दिया। अब वह स्कूल जाता तो चुपचाप से अपने बस्ते में गुलेल भी रख ले जाता। जब मध्यावकाश होता, वह स्कूल के पीछे मैदान में जाकर गुलेल चलाता। दो-चार उद्दंड, शरारती लड़के भी उसके साथ लग गए। अब कोई न कोई पक्षी प्रतिदिन ही उनका शिकार बनता। एक दिन एक लड़के ने चुपचाप से मास्टर साहब से मलय की शिकायत कर दी। उन्होंने पहले तो उसे बहुत डाँटा फिर प्यार से समझाते हुए कहा—'जीवों की हत्या करना घोर पाप है। सभी में हमारे जैसे प्राण होते हैं। सोचो, तुम्हें कोई पत्थर मारे, तुम्हारे खून निकले, तो तुम्हें कैसा लगेगा ?'

मास्टर साहब की बात मलय ने सिर झुका कर सुन ली, पर अभी भी वह अपनी गल्ती नहीं मान रहा था। वह तो उस लड़के से

बदला लेने की बात सोच रहा था जिस पर उसे शिकायत करने का संदेह था।

रास्ते में मलय और उसके उद्दंड साथियों ने उस लड़के की खूब पिटाई की। उसने रोते-रोते कहा—'तुम ऐसा कर रहे हो, उसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। पाप करने वाला कभी सुखी नहीं रहता।'

'मैं सुखी रहूँ या दुःखी, यह बता तू मेरी और शिकायत करेगा।' गुस्से में भरकर मलय ने पूछा।

'हाँ-हाँ करूँगा-करूँगा, तब तक करता रहूँगा, जब तक कि तुम निरपराध जीवों को मारना नहीं छोड़ दोगे' उस लड़के ने भी तनकर कहा और उनका आक्रमण सहने की मुद्रा में खड़ा हो गया।

'जाओ आज का सबक तो तुम्हें बहुत मिल गया, कल का कल मिलेगा मलय चिढ़कर बोला।'

'भगवान के यहाँ देर है, पर अंधेर नहीं। तुम्हें भी जरूर सबक मिलेगा' यह कहकर वह लड़का आगे बढ़ गया।

घमंड से भरा मलय भी आगे बढ़ा। तभी वह सामने से आते एक स्कूटर से टकरा गया। उसके माथे से खून की धार बह चली। सारे कपड़ों पर खून के छींटे पड़ गए। मलय एकदम घबरा गया, उसे चक्कर-सा आने लगा। तभी उसने देखा कि सामने से वही लड़का अमर आ रहा है, जिसे उसने आज मारा था। मलय को सहसा ही संदेह हुआ 'क्या यह मुझे असहाय देखकर बदला लेने के लिए आ रहा है?'

तभी अमर ने आकर उसका हाथ पकड़ा और सड़क के किनारे ले गया। उसने मलय का बस्ता उतार कर एक ओर रखा। अपना रूमाल निकलकर उसके माथे पर बाँधा। तब तक वहाँ भीड़ जमा हो

चुकी थी। स्कूटर वाले का पता भी न था। खून था कि बंद ही न हो रहा था। अमर ने जल्दी से हाथ देकर एक कार को रुकवाया और मलय की स्थिति बताते हुए उससे अस्पताल चलने का आग्रह किया। कार वाला सज्जन व्यक्ति था, उसने स्वीकार कर लिया। दो व्यक्तियों ने पकड़कर मलय को कार में लिटा दिया। उसका सिर घूम रहा था। माथे में तेज दर्द हो रहा था। उसके कानों में ये वाक्य गूँज रहे थे—'तुम्हें कोई पत्थर मारे, तुम्हारे खून निकले, तो कैसा लगेगा। 'पाप करने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता।' 'तुम्हें भी सबक जरूर मिलेगा?'

अस्पताल पहुँचते-पहुँचते वह बेहोश हो गया। डॉक्टर ने तुरंत खून बंद करने का उपाय किया, उसके माथे पर टाँके लगाए और होश दिलाया। अमर उसे उसी कार में लिटाकर उसे घर तक छोड़ आया। जब अमर घर जाने लगा तो अपने व्यवहार को याद कर मलय की आँखें भर आयीं। उसने अमर से माफी माँगी।

'अरे, अरे परेशान न होओ, जल्दी से ठीक हो जाओ।' अमर ने उसे ढाढ़स बँधाया।

मलय को बिस्तर पर सप्ताह भर तक आराम करना पड़ा। उसके सामने उन अभागे पक्षियों का बिम्ब घूम जाता था, जिनको उसने सताया था। अपनी क्रूर वृत्ति को याद कर उसका मन काँप उठता था। जब वह ठीक हुआ तो सामने पहला काम यह किया कि गुलेल तोड़कर फेंक दी। स्कूल में अब अमर उसका सबसे घनिष्ठ मित्र बन गया है।



मित्रता

कई दिनों पूर्व ही उन लड़कों के नामों की सूची सूचनापट पर लगा दी गयी थी, जिन्होंने फीस जमा नहीं की थी। आज तो क्लर्क ने पुंडरीक को बुलाकर स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि उसने कल तक फीस जमा नहीं की तो वह परीक्षा का फार्म नहीं भर सकेगा। पुंडरीक–रूआँसा–सा ऑफिस के बाहर आकर खड़ा हो गया। उसके पिता फलों का ठेला लगाते थे और परिवार के निर्वाह के लिए कमा लेते थे, परंतु वह चार महीने से बीमार पड़े थे। माँ भाग–दौड़ करके भी फीस के लिए रुपए इकट्ठे नहीं कर पायी थीं। अब तो पुंडरीक को निश्चित–सा लग रहा था कि इसी कक्षा में रह जाएगा। उसका वर्ष भर का परिश्रम बेकार चला जाएगा।

तभी पुंडरीक की कक्षा का एक छात्र पंकज किसी कार्य से उधर आया। पुंडरीक पर दृष्टि पड़ते ही वह ठिठक गया। ऐसा लग रहा था कि वह बहुत ही अस्वस्थ और परेशान है। वह तुरंत उसके पास आया और बोला—'क्यों, क्या हुआ तुम्हें ?'

सहानुभूति पाकर पुंडरीक की आँखों से आँसू बह चले। उसने सिसकते हुए पूरी बात पंकज को बात दी। उससे पंकज भी कुछ विचारमग्न हो गया। फिर वह पुंडरीक के कंधे पर हाथ रखकर उसे धैर्य बँधाते हुए बोला—'तुम चिंता न करो। इस समय तो कक्षा में चलो।' फिर कोई रास्ता निकालने का प्रयास करेंगे।'

कक्षा में भी पुंडरीक उदास बैठा रहा। उसका पढ़ाई में बिलकुल मन न लगा। छुट्टी के समय पंकज ने उसे शाम के समय अपने घर आने के लिए कहा।

पंकज ने घर जाकर माँ को पूरी बात बतायी। उसकी माँ बड़े दयालु स्वभाव की थी। वह करुणा से भर उठीं। उन्होंने पुंडरीक को फीस के रुपए देना स्वीकार कर लिया। शाम को पुंडरीक आया तो उन्होंने पूरे तीन सौ रुपए उसके हाथ पर रख दिए। पुंडरीक को रुपए पाने की संभावना न थी। वह तो सहपाठी के कहने भर से चला ही आया था। वह गद्गद् कंठ से बोला—'आपका यह उपकार मैं जीवन भर न भूलूँगा। जैसे ही पिताजी ठीक होंगे, मैं थोड़े-थोड़े करके आपके सारे रुपए चुका दूँगा।'

'जब भी तुम्हें सुविधा हो दे देना।' पंकज की माँ ने स्नेह से उसे आश्वासन दिया और चाय-नाश्ता कराके विदा किया। अब पुंडरीक निश्चिंत हो पढ़ाई में जुट गया। वह घोर परिश्रम करने लगा, जिससे प्रथम श्रेणी आ सके। पुंडरीक के लिए प्रथम श्रेणी में आना बहुत ही आवश्यक था क्योंकि एक तो इसके आधार पर ही अगली कक्षा में अच्छे स्थान पर प्रवेश मिलना था, दूसरे इसके बाद छात्र वृत्ति भी मिलनी थी, जो आर्थिक समस्या का कुछ हल करती।

पुंडरीक के पंकज के साथ घनिष्ठ संबंध हो गए थे। एक बार चार-पाँच दिन तक जब पंकज कक्षा में नहीं आया, तो पुंडरीक को चिंता हुई। उसके घर जाने पर पता चला कि वह बीमार है। डॉक्टर ने टाइफाइड बताया है और वह एक माह तक स्कूल न जा सकेगा। परीक्षाएँ निकट थीं। पंकज के मन में इस बात को लेकर बहुत परेशानी थी कि वह स्कूल में जो पाठ्यक्रम कराया जा रहा है, उसे कैसे पूरा करेगा? पुंडरीक ने उसे आश्वासन दिया कि थोड़ा ठीक होते ही वह उसे पूरा कोर्स करा देगा।

पुंडरीक हृदय से पंकज का बहुत आभारी था। उसने अब प्रतिदिन सायंकाल पंकज के घर जाने का दैनिक क्रम बना लिया था। यदि उसे तेज बुखार होता, तो पुंडरीक हल्की-फुल्की बातें करता

और यदि कुछ ठीक होता, तो उसे कक्षा में पढ़े विषय बतलाता। आने-जाने और इस कार्य को करने में यद्यपि पुंडरीक का समय भी लगता था, पर वह इसकी पूर्ति सुबह जल्दी उठकर कर लेता। 'पंकज के यदि अच्छे अंक न आए तो मेरा क्या उपयोग?' मन ही मन पुंडरीक सोचा करता।

पूरी निष्ठा और लग्न से जो परिश्रम किया जाता है वह कभी निष्फल नहीं जाता। पुंडरीक के प्रतिदिन के निरंतर प्रयास से पंकज का छूटा हुआ पाठ्यक्रम पूरा हो गया। यही नहीं पुंडरीक उसके मनोबल को भी बढ़ाता रहता था। अब तक उसके परिवार से भी वह घुलमिल गया था। पंकज की माँ भी उससे स्वाभाविक स्नेह करने लगी थीं। पंकज के ठीक होने पर भी पुंडरीक प्रतिदिन उसके घर जाया करता और दोनों मिलकर पढ़ते।

परीक्षाफल आया तो पुंडरीक और पंकज दोनों ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण थे। पंकज की माँ ने उसके अच्छे अंकों का श्रेय पुंडरीक को दिया।

आठ मास बाद पुंडरीक रुपए लेकर पंकज की माँ के पास गया, तो उन्होंने लेने से मना कर दिया। पंकज बीच में ही बोल पड़ा—'अरे भाई!' तुमने मेरे लिए जो कुछ किया है, उसके ऋण से तो मैं कभी उऋण न हो पाऊँगा।'

'वह तो मेरा कर्त्तव्य था पंकज। ये रुपए तो मैंने ऋण लिए थे।' पुंडरीक कहने लगा।

'बेटे, तुम हमारी बात का बुरा न मानना। अब तो तुम हमारे परिवार के सदस्य जैसे बन चुके हो। यह रुपए हम तुमसे न लेंगे। जीवन में जब कभी कोई आवश्यकता ग्रस्त व्यक्ति दीखे, तो उसकी सहायता करना। तुम्हारा यह ऋण दूर हो जाएगा।' पंकज की माँ बोली।

पंकज की माँ के स्नेह भरे आदेश को सुनकर पुंडरीक कुछ न बोल सका। साथ ही उसे ऋण चुकाने की सही दिशा भी मिल चुकी थी।



मानवीयता का संबंध

'संकट में पड़े हुए की सहायता करनी चाहिए,' 'मनुष्यता इसी में है कि हम दूसरों के दुःख में काम आएँ' जैसे वाक्य गुरप्रीत सत्संग में प्रायः ही सुनता रहता था। उसकी दादी और माँ भी घर में शौर्य और परोपकार से ओतप्रोत कहानियाँ सुनाया करती थीं। गुरप्रीत का किशोर मन उनसे पूरी तरह प्रभावित हो चुका था।' वह किसी दीन-दुखी को देखता, तुरंत उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ आता।

एक बार वह शाम के समय घर लौट रहा था। सहसा ही उसे ध्यान आया कि कुछ सामान खरीदना है। वह दुकान पर गया तो काउण्टर खाली पड़ा था। 'दुकानदार आस-पास कहीं गया होगा, अभी आता होगा' यह सोच कर गुरप्रीत वहाँ खड़ा रहा। तभी उसे अंदर से कुछ फुसफुसाने की आवाजें आयीं। एक व्यक्ति की हल्की चीख-सी भी सुनाई दी। गुरप्रीत अपने को रोक न सका। उसने तुरंत दो-चार कदम उधर बढ़ाए। तीन व्यक्ति दुकानदार को पकड़े थे। एक के पास रायफल थी, जिसकी नली उसने दुकानदार की ओर तान रखी थी। उसकी गुरप्रीत की ओर पीठ थी। गुरप्रीत ने तुरंत पीछे से जाकर उसे धक्का दिया। रायफल उसके हाथ से छूट कर दूर जा गिरी। गुरप्रीत उसे उठाने के लिए आगे बढ़ा ही था कि साथ वाले व्यक्ति ने चाकू निकाल कर गुरप्रीत पर प्रहार कर दिया। इतने में दुकानदार मौका पाकर बाहर की ओर भाग निकला और शोर मचाने

लगा। लुटेरों को लगा कि अभी भीड़ इकट्ठी हो जाएगी और वे फँस जाएँगे। वे बाहर की ओर भागे पर जाते-जाते भी गुरप्रीत पर गोली चलाते गए। उन्हें इस लड़के पर बहुत गुस्सा आ रहा था। ऐन मौके पर बीच में ही न जाने कहाँ से आ टपका था और उनकी पूरी योजना पर पानी फिरा दिया था। यदि कुछ देर और न आया होता तो बीस हजार की थैली वे दुकानदार से छीनने में सफल हो गए होते।

गुरप्रीत ने चाकू और गोली खाकर भी दुकानदार की सहायता की थी। उसे अपने घायल होने का उतना दु:ख न था, जितनी कि दूसरे की रक्षा करने की प्रसन्नता थी। उसे जल्दी से अस्पताल ले गया, जहाँ तुरंत उसकी चिकित्सा की गयी। कुछ दिन अस्पताल रहकर वह जल्दी ही घर वापस आ गया। सभी ने सराहना और प्रशंसा की। अपने इस साहस भरे कार्य के लिए उसे विविध संस्थाओं से पुरस्कृत भी किया गया। किसी अपरिचित की रक्षा के लिए अपने प्राणों को संकट में डाल देना निश्चित ही बहुत बड़ी उदारता और महानता है। ऐसे सपूतों पर मानवता भी गर्व करती है।



भटका मन

सुचेत को लगता था कि अब घर में उसकी कोई सुनने वाला है ही नहीं। अब उसकी जिद जल्दी ही पूरी नहीं हो पाती थी, जिद करता तो पिताजी झिड़क देते, माँ डाँट देतीं। छोटे भाई-बहिनों का सामान छीन लेना, उन्हें डाँटना-मारना यह कार्य भी अब पहले की भाँति न हो पाते क्योंकि माँ उन्हीं का पक्ष लेतीं। जब तक दादी माँ थीं, वे उसका पक्ष लेती रहती थीं। उसे अपने मन की हर बात कहने का अवसर मिल जाता था। वे प्राय: उसे मनमानी खाने-पीने के लिए पैसे भी दे दिया करती थीं। अब तो माँ हर खर्च का ब्यौरा पूछ

लिया करती थीं। पिताजी थे कि हर समय उससे पढ़ने के लिए ही कहा करते थे। सुचेत का मन पढ़ाई में न लगकर खेल-कूद और शरारतों में अधिक लगता। परिणाम यह होता कि उसे पिताजी की डाँट खानी पड़ती। ऐसे अवसर पर उसे दादी माँ की बहुत याद आती। अभी पाँच महीने पहले ही उनकी मृत्यु हुई थी। वास्तव में सुचेत की ऐसी स्थिति का बहुत बड़ा कारण भी वे ही थीं। उसके माता-पिता उनके सामने अधिक कुछ नहीं बोल पाते, कुछ बोलते भी तो वे सुचेत के सामने ही उसका पक्ष लेतीं। इस सबसे वह बड़ा जिद्दी, झगड़ालू और लापरवाह हो गया था।

उस दिन भी यही बात हुई थी। परीक्षाएँ निकट थीं। सुचेत को इधर-उधर घूमने, टी०वी० देखने और खेलने से ही फुरसत न थी। पिताजी ने उसे डाँटा तो वह भी गुस्से में भर कर कुछ बोल उठा। इस पर उन्होंने एक तमाचा सुचेत को लगा दिया। बस तभी गुस्से में भरकर सुचेत निकल पड़ा, जेब खर्च के बचाये हुए दो सौ रुपए उसके पास थे। चलते-चलते उसने उन्हें भी जेब में डाल लिया था। वह सीधा स्टेशन पहुँचा। सामने डीलक्स एक्सप्रेस गाड़ी खड़ी थी। बिना सोचे-समझे वह उसमें चढ़ गया। जब गाड़ी चलने लगी तो वह चौंका। अब तक तो वह गुस्से में पागल हुआ यह सब काम कर बैठा था। अब उसे होश आया। 'अरे, यह गाड़ी कहाँ जायेगी? मेरे पास तो टिकिट भी नहीं है' उसे ध्यान आया। पास के यात्री से पूछने पर पता चला कि गाड़ी बम्बई जा रही है। बम्बई सुचेत के दूर के रिश्ते के एक मामा रहते थे। बचपन में एक बार कभी वह उनके यहाँ गया भी था। अतएव सुचेत ने सोचा कि मामा के यहाँ कुछ दिन रहकर लौट आएगा। बोरीबिली में वे रहते हैं, इतना उसे पता था। अगले स्टेशन पर उतरकर वह टिकिट ले आएगा, ऐसा वह सोचने लगा।

गाड़ी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती थी, सुचेत का मन भी विचलित होता जाता था। उसे बार-बार यही लग रहा था कि वह बेकार घर से चला आया है। अब उसे लगा कि पिताजी उसकी भलाई के लिए ही तो डाँटते होंगे। न होगा तो अगले स्टेशन पर उतर जाएगा और घर ही वापस लौट जाएगा। ऐसा वह सोचने लगा। तभी पास बैठे भले से दीखने वाले एक यात्री ने सुचेत से पूछा-'कहाँ जा रहे हो?'

'बम्बई' वह कुछ हकलाता हुआ-सा बोला।

उस व्यक्ति ने सुचेत को देखकर ही यह अनुमान लगा लिया था कि सच्चाई क्या है? उसने अपने साथ प्यार से सुचेत को खिलाया-पिलाया। फिर उसे स्नेह और सहानुभूति देकर उससे पूरी बात जान ली। 'कोई बात नहीं, मैं तुम्हें बोरीबली तुम्हारे मामाजी के यहाँ छोड़ दूँगा। मुझे बम्बई ही जाना है।' उसने सुचेत से कहा।

इतने में टी०टी०आ गया। उस व्यक्ति ने झट से सुचेत की टिकिट के लिए पैसे निकाल कर दे दिए। उस समय वह कुछ बोल भी न पाया। टी०टी० के चले जाने पर सुचेत ने उसे रुपए देने की बहुत चेष्टा की, परंतु उसने लिए ही नहीं। 'अरे जल्दी क्या है?' तुम्हारे साथ ही चल रहा हूँ बाद में दे देना।' ऐसा कहकर उसने सुचेत की भी चुप कर दिया।

लम्बा रास्ता था। रास्ते भर वह व्यक्ति सुचेत के खाने-पीने का बड़ा ध्यान रखता रहा, उससे बड़े स्नेह से बातें करता रहा। सुचेत भोलेपन में अपने घर-परिवार की सारी जानकारी उसे दे गया। वह घर से नाराज होकर आया है और क्यों आया है—यह पूरी बात भी उसे बता दी। उसने सुचेत की बात का ही समर्थन किया।

ट्रेन जब बम्बई पहुँची, तो रात हो चुकी थी। प्लेटफार्म से बाहर निकल कर वह व्यक्ति सुचेत से कहने लगा कि उस समय उसे

मामा के यहाँ पहुँचाना संभव नहीं है। उसके पास पता भी पूरा नहीं है। यदि सुचेत चाहे तो इस समय उसके साथ चले, प्रातः वह उसे छोड़ आएगा। बम्बई की चकाचौंध देखकर सुचेत वैसे ही चकरा गया था। उसने तुरंत हाँ कर दी।

वे दोनों ऑटो रिक्शा में बैठ गए। सुचेत सोचने लगा कि यह व्यक्ति कपड़ों से तो अमीर लगता है। इसका घर भी अच्छा-सा होगा। रिक्शा एक घंटे शहर में दौड़ने के बाद कुछ सुनसान से रास्ते पर चला और अंत में एक गंदी सँकरी-सी गली में, पुराने खंडहर से दीखने वाले मकान के सामने रुक गया। उस व्यक्ति के साथ अंदर आकर तो सुचेत अवाक् ही रह गया। उन्होंने जिस कमरे में प्रवेश किया यहाँ पाँच आदमी बैठे शराब पी रहे थे और जोर-जोर से शोर मचा रहे थे। 'नयी चिड़िया फँसा लाए उस्ताद।' एक आदमी ने उसे देखते ही अट्टहास किया। जो व्यक्ति सुचेत को साथ लाया था उसने घंटी बजायी। एक दुबले और सहमे हुए बच्चे ने प्रवेश किया। उस आदमी ने धीमे-से उससे कुछ कहा। बच्चा सुचेत को अपने साथ ले गया और पहनने के लिए एक मैला फटा-सा नेकर और कमीज उसे पकड़ा दी।

'मुझे तो सुबह ही यहाँ से चले जाना है' सुचेत बोला। वह अभी भी पूरी बात न समझ पा रहा था।

बड़े आदमी ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—'यहाँ से अब कहीं भी जाने की बात भूल जाओ। अपने कपड़े और पैसे चुपचाप मुझे दे दो।' जो कहा जाए, उसे मानो नहीं तो......।'

'नहीं तो............?' धीमे से सुचेत ने पूछा।

व्यक्ति ने उसका हाथ पकड़ा, घसीटता हुआ एक कमरे की ओर ले गया और खिड़की से अंदर का दृश्य दिखा कर कहा— 'तुम्हारा भी यही हाल होगा।'

सुचेत काँप उठा। अंदर दो बच्चे रस्सियों से बँधे पड़े थे। एक आदमी उन पर घूँसे-थप्पड़ बरसाते हुए कह रहा था—'बोलो अब करोगे अपनी मनमानी?'

उस आदमी ने अब सुचेत का हाथ छोड़कर कहा—'तुम कुछ बड़े हो, समझदार भी होना चाहिए। अच्छी तरह सोच लो, तुम्हें क्या करना है?'

अब तक सुचेत की समझ में धीरे-धीरे सारी बात आने लगी थीं। तभी एक बच्चा आकर उसे अपने साथ ले गया। टूटी-सी तश्तरी में सूखी रोटी रखी थी। ऐसी रोटी तो सुचेत की माँ कुत्ते को भी नहीं खिलाती थीं। उसकी आँखों में आँसू भर आए और वह बिना खाए ही उठ गया। बारह-चौदह बच्चे जमीन पर लेटे थे, सुचेत चुपचाप जाकर उन्हीं के पास लेट गया। उसकी आँखों की नींद उड़ चुकी थी। वह उस कुघड़ी को कोस रहा था, जब उसने घर से भागने की बात सोची थी। उसे माँ-पिताजी और छोटे भाई-बहिनों की याद सताने लगी। उसे अपने किए पर बहुत पछतावा हो रहा था। सुचेत यह बात अच्छी तरह समझ गया था कि इस गिरोह से उलझने से कोई लाभ नहीं है। अच्छा यही है कि वह इनकी हर बात मान ले, इनका विश्वास जीत ले और तब यहाँ से निकलने की कोशिश करे। रोते-रोते सुचेत की आँख लग गयी।

'क्या सोते ही रहोगे ' आवाज सुनकर सुचेत की आँख खुली। जो उसे लाया था, वही व्यक्ति सामने था।

'अरे बहुत गहरी नींद आयी' वह आँख मलते हुए उठ बैठा।

फिर उस व्यक्ति से विनती करते हुए बोला—'मैं सोचता हूँ मामाजी के यहाँ न जाऊँ। वे भी तो आखिर मुझे पिताजी के पास ही भेज देंगे। मैं घर बिलकुल नहीं जाना चाहता।'

'ठीक है, तो तुम से जो भी कहा जाए उसे मानो।' वह बोला।

उसी दिन से सुचेत और कुछ नए लड़कों का प्रशिक्षण आरंभ हो गया। यह गिरोह नशीले पदार्थों की तस्करी करता था। इन्हें कैसे छिपाया जाए, अड्डे तक कैसे पहुँचाया जाए, इसका पूरा प्रशिक्षण बच्चों को दिया जाता था। अड्डे पर जाते समय एक बच्चे के साथ एक बड़ा आदमी रहता। घर से जाते समय एक बच्चे की आँखों पर कसकर पट्टी बाँध दी जाती, जिससे वह कुछ देख न सके। एक कार आती और बैठा ले जाती। उतरने से दो मिनट पहले आँख की पट्टी खोल दी जाती। नियत स्थान पर बच्चे को खड़ा कर दिया जाता और बड़ा आदमी दूर से उसकी निगरानी करता। कार्य समाप्ति पर फिर पहले की भाँति ही आँखों पर पट्टी बाँध कर घर ले जाया जाता। घर में सभी बच्चों पर कड़ी निगरानी रहती। लोहे के बड़े फाटक पर सदैव ताला लगा रहता। बच्चे किसी से मिल-जुल भी नहीं सकते थे। एक मास तक सुचेत इसी प्रकार रहा। निकलने और भागने का कोई रास्ता वह न खोज पाया। कभी-कभी वह निराश भी होने लगता। लगता अब तो पूरा जीवन यों ही बिताना पड़ेगा। वह रात को सोते समय भगवान से प्रार्थना करता कि इस कैद से निकालें। अपनी दुर्बुद्धि की बहुत बड़ी सजा उसे मिल चुकी थी। अब सुचेत ने निश्चय कर लिया था कि वह प्राणों की बाजी लगाकर भी इस स्थिति से निकलेगा। ऐसे घिनौने जीवन से उसे घृणा होने लगी थी। उसे बार-बार यह सूक्ति याद आती कि 'शूरवीर एक ही बार मरता है, जबकि कायर मृत्यु से पूर्व अनेक बार मर चुका होता है।' उसने कायर की भाँति नहीं, शूरवीर की भाँति जीने का दृढ़ निश्चय किया। यह मन ही मन घुटता था, पर बाहर से दिखाता था कि प्रसन्न है।

एक दिन जब सुचेत सड़क पार कर रहा था, तो घने यातायात के कारण उसके साथ के आदमी को चार कदम आगे बढ़ना पड़ा। तभी सुचेत की दृष्टि सहसा ही पुलिस जीप पर पड़ी। वह दौड़कर उसमें चढ़ गया। उसका घबराया चेहरा देखकर पुलिस अधिकारी ने पूरी बात जाननी चाही, पर उसने यही कहा—'साहब पहले उस आदमी को पकड़िए।' तब तक जीप एक चौराहा पार कर चुकी थी। उसकी बात सुनकर उन्होंने सादे कपड़ों में बैठे एक आदमी के साथ उसे वहाँ भेजा जहाँ सामान देना था, पर वह अड्डे का आदमी काफी देर खड़े रहने पर भी वहाँ न आया। शायद उसे खतरे का अनुभव हो चुका था।

कार्यालय पहुँचकर सुचेत ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को अपने घर से यहाँ आने तक की पूरी कहानी सुनायी। सुचेत तो उस कैद से बाहर आ गया था, परंतु वहाँ बंद दूसरे बच्चों को छुड़ाने के लिए उसके मन में बहुत व्याकुलता थी। वह बार-बार अधिकारी महोदय से यही निवेदन कर रहा था कि जैसे भी हो, उन बच्चों को छुड़ा लाएँ, पर परेशानी यह थी कि उस स्थान का पूरा पता सुचेत को नहीं था। वह जिस रास्ते से पहली बार गया था, उसी का विवरण दे सका। सुचेत की दुकानों, होटलों आदि के नाम पढ़ते जाने की आदत थी। वही उसने उन्हें बता दिए। पुलिस ने बहुत भाग-दौड़ करके आखिर उस स्थान का पता लगा ही लिया। रात के समय वहाँ छापा मारा गया। अपराधियों का गिरोह तो छिपकर गुप्त रास्ते से भाग निकला था। परंतु वहाँ कैद बच्चों को पुलिस ने छुड़ा लिया। सभी अपहृत थे, या फिर घर से भागे हुए बच्चे थे। सुचेत यदि अपने इस प्रयास में असफल रहा होता, तो अपराधी उसे मार-मार कर अपंग बना देते। यदि जीप से तनिक भी फिसल गया होता तो भी कोई

दुर्घटना घट सकती। उसने अपने प्राण हथेली पर रखकर ही यह दुस्साहस किया था।

जल्दी ही सुचेत के पिता बम्बई आ गए। बेटे के गुम हो जाने के दु:ख से वे दुर्बल और रोगी बन गए थे। सुचेत को देखते ही उन्होंने गले से लगा लिया।

'पिताजी मुझे माफ कर दीजिए। मैंने बहुत बड़ी गलती की है।' सुचेत उनसे लिपटते हुए बोला। वह कहने लगा—'अब की बार मुझे क्षमा कर दीजिए पिताजी! मेरी आँख खुल चुकी हैं। अब मैं मन लगाकर पढ़ूँगा और आपकी बात भी मानूँगा।'

सुचेत तो खुशी-खुशी पिता के साथ घर चला गया। उधर पुलिस ने जब्त सामान के आधार पर आखिर अपराधियों को पकड़ ही लिया। सुचेत ने अखबार में जब यह समाचार पढ़ा, तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। समाचार में उसके साहस की भी चर्चा की गयी थी।



सुदामा के चावल

नकुल के जन्मदिन का आयोजन था। माँ ने कमरे को खूब सजाया था और तरह-तरह की चीजें बनायी थीं। नकुल के मित्र इकट्ठे हुए और देर तक मनोरंजन और खाना-खिलाना चलता रहा। यद्यपि नकुल ने अपने मित्रों से मना कर दिया था कि वे कोई भी उपहार न लाएँ, परंतु सभी कुछ न कुछ लेकर आए थे। नकुल संपन्न परिवार का था। उसके अधिकांश मित्र भी धनी परिवारों के थे और सभी के घर उसका आना-जाना था। उनकी माताओं ने पारिवारिक संबंधों को ध्यान में रखते हुए, नकुल के लिए कीमती और सुंदर उपहार भेजे थे। विदा होते समय नकुल के मित्रों ने एक-एक करके

उसे उपहार दिए। नकुल सभी की प्रशंसा करता जाता था और धन्यवाद देता जाता था।

प्रज्ञेश एक कोने में चुपचाप खड़ा था। इतने मूल्यवान उपहारों के बीच अपना उपहार बाहर निकालने का उसका साहस न हो पा रहा था। वह अपने आपको कोस रहा था कि क्यों बेकार ही यहाँ चला आया। प्रज्ञेश तो एक गरीब और साधारण से परिवार का लड़का था। यहाँ की चकाचौंध उसके लिए सर्वथा नयी और आश्चर्य में डालने वाली थी। 'मुझे नकुल और उसके सहपाठियों से केवल स्कूल में ही संबंध रखना चाहिए।' वह मन ही मन सोच रहा था।

प्रज्ञेश कुशाग्र बुद्धि का मेधावी छात्र था। नकुल भी पढ़ाई में अच्छा था। इसी कारण दोनों की मित्रता हो गयी थी। नकुल प्रज्ञेश की प्रतिभा का सम्मान करता था। पढ़ने में कुछ कठिनाई होती, तो वह निःसंकोच उससे पूछ लिया करता था। इस प्रकार दोनों में धीरे-धीरे मित्रता बढ़ती जा रही थी।

नकुल का जन्मदिन आया तो उसने अपने अन्य मित्रों के साथ-साथ प्रज्ञेश को भी घर आने का निमंत्रण दिया। वह बहुत टालता रहा, पर नकुल माना ही नहीं बोला—'मैं तेरी सुनने वाला नहीं। नहीं आएगा, तो हम सब दोस्त तुझे लेने तेरे घर आ धमकेंगे।'

और अंत में प्रज्ञेश को 'हाँ' करनी ही पड़ी थी। उसने मित्रों से पता किया था, तो वे उसके लिए कुछ न कुछ उपहार ले जा रहे थे। प्रज्ञेश चिंता में डूब गया कि क्या ले जाए? अधिक रुपए वह खर्च नहीं कर सकता था। अंततः उसने घर पर ही उपहार तैयार करने की बात सोची।

पर आज उस उपहार को निकालने में भी प्रज्ञेश झिझक रहा था। वह सोच रहा था कि किसी प्रकार रुपए माँग कर ही कुछ

बाजार से खरीद लाता। क्यों वह इस झंझट में बेकार फँसा। समय भी खराब हुआ और सबके सामने लज्जित भी होना पड़ेगा।

तभी नकुल आगे बढ़ा। वह प्रज्ञेश की झिझक समझ रहा था। उसने उसके हाथ से डिब्बा लेकर खोल लिया। एक सजी हुई सुंदर गुड़िया उसमें से निकल पड़ी। मित्र मन ही मन कह रहे थे, कैसा है यह, इसे देने के लिए और कोई वस्तु नहीं मिली?

प्रज्ञेश ने बताया कि यह गुड़िया उसकी माँ ने तैयार की है। नकुल गुड़िया की बहुत प्रशंसा करने लगा। मित्रों को भी लगा कि इतनी सुंदर तो यह है नहीं, जितनी की नकुल प्रशंसा किए जा रहा है। वे समझ गए कि प्रज्ञेश का मन रखने के लिए ही वह ऐसा कह रहा है अन्यथा कहाँ वह उनके सुंदर मूल्यवान उपहार और कही यह साधारण सी घर पर बनी गुड़िया।

अब तक प्रज्ञेश का भी संकोच दूर हो चुका था। वह उत्साहित होकर आगे बढ़ा। उसने गुड़िया के लँहगे के नीचे से प्लग निकालकर सामने बिजली के बोर्ड पर लगा दिया और कमरे की सारी बिजलियाँ बंद कर दीं। गुड़िया की आँखों में लगे दो नीले वल्ब चमकने लगे। कमरे में बहुत थोड़ा-सा प्रकाश हो गया। प्रज्ञेश कहने लगा—'यह गुड़िया रात्रिकालीन लैंप का भी काम करेगी।'

'और यह प्रज्ञेश की बुद्धि का कमाल है।' नकुल बहुत ही प्रसन्न होकर बोला।

प्रज्ञेश ने सकुचाते हुए बतलाया कि उसने लैंप की ऐसी कल्पना करके ही माँ से गुड़िया बनवायी थी।

प्रज्ञेश का यह अनौखा उपहार अलग ही चमक रहा था। उसके साथ भावनाएँ तो जुड़ी ही थीं, साथ में मौलिकता भी थी। सच है, बहुत-सा पैसा खर्च करके भी हम दूसरे को वह प्रसन्नता नहीं दे सकते, जो स्वयं कोई मौलिक वस्तु तैयार करके दे सकते हैं। स्वयं

बनाकर दी गयी कोई भी वस्तु अमूल्य होती है। वह प्रयोग करने वाले को निरंतर ही हमारे स्नेह की याद दिलाती रहती है। मूल्य वस्तु का नहीं, उसके साथ जुड़ी भावना का होता है। सुदामा के चावल इसीलिए तो अमूल्य थे। प्रज्ञेश का यह उपहार भी कुछ वैसा ही था।



भूल का सुधार

गाँव से दादी की चिट्ठी आयी थी। मम्मी-पापा दोनों घर में नहीं थे। आज वसु और विश्वा को अपने मन की भड़ास निकालने का अच्छा अवसर मिला था। दोनों ने आपस में मिलकर सलाह की और झट से उत्तर लिख डाला—'पापा बाहर गए हैं, कब तक लौटें कुछ पता नहीं। वैसे भी आजकल बहुत काम है, आ नहीं पायेंगे। आप गाँव में ही दिखा लें, वहाँ भी तो सरकारी अस्पताल खुल गया है और दवा भी मुफ्त मिल जाती है। पापा को जब समय मिलेगा आ जाएँगे।'

दोनों भाई-बहिनों ने आपस में सलाह कर ली कि मम्मी-पापा को इस विषय में कुछ नहीं बताना है। दोनों अपनी बुद्धिमानी पर बहुत प्रसन्न हो रहे थे। वसु कहने लगा—'बुरा लगेगा तो आएँगी ही नहीं फिर। रोज-रोज आने-जाने का चक्कर खतम ही हुआ समझो।'

'चली आती हैं अपने फटेहाल झोले उठाए।' विश्वा बोली।

'और जमाती है पूरे घर पर अपना रौब।' मुँह बिचका कर वसु ने कहा—'जैसे कोई हमारी बिल्कुल सगी ही हों।'

दादी वहाँ से सौ मील दूर एक गाँव में रहती थीं। यह विश्वा-वसु की सगी तो क्या दूर के रिश्ते की भी कोई नहीं थीं।

उनके पिता उसी गाँव के थे और गाँव के रिश्ते से उन्हें मौसी कहते थे। पिता उनका बहुत आदर करते थे, बिलकुल माँ की तरह। वे कहा करते थे कि बचपन में ही जब उनकी माँ मर गयी थीं, तो पड़ौस की इस मौसी ने ही उनका लालन-पालन किया था। इतना ही नहीं पिताजी के मरने की बाद पढ़ने-लिखने और नौकरी पाने तक उनकी आर्थिक सहायता भी की थी। वे पिताजी को अपने बेटे की भाँति मानती थीं और पिताजी उन्हें माँ की भाँति। विश्वा और वसु सोचते—'अरे जब किया था तो किया, अब तक उसका गुणगान करने की क्या जरूरत है ? उन्होंने जितना किया होगा उसके भी कई गुना अधिक तो पिताजी इनके लिए अब तक कर चुके हैं।'

उन्होंने जब से होश सँभाला था यही देखा था कि दादी जब तब उनके यहाँ चली आतीं। आतीं तो एक बार में पंद्रह-बीस दिन से कम न रहतीं। माँ-पिताजी उनका खूब सत्कार करते। वे जातीं तो ढेर सारा सामान उनके साथ बाँध दिया जाता। कपड़े तो शायद ही वे कभी खरीदती होंगी। चीनी, अचार, पापड़, बड़ी, मिठाई, नमकीन और न जाने क्या-क्या चीजें माँ उनके थैले में भर देतीं।

जैसे-जैसे विश्वा और वसु बड़े हो रहे थे, उन्हें दादी अखरती जा रही थीं। उस महानगर की चमक-दमक की संस्कृति में, सजी हुई अपनी कोठी में वे गँवार ही नहीं, फूहड़ भी लगती थी। मोटी खादी की सफेद धोती जो प्रायः पीली सी पड़ गयी होती, उसे ऊँची-ऊँची पहने, लाठी लेकर ठक-ठक करके चलतीं, झुकी कमर और पोपले मुँह वाली तम्बाकू खाती, काली और पतली-सी, ग्रामीण भाषा में बतियाती, यही थी उनकी दादी। विश्वा की सहेलियाँ—या वसु के मित्र आते तो उनके मुँह से यही निकलता—'तुम्हारी नौकरानी है क्या ? और वे

कटकर रह जाते। यही नहीं दादी उन्हें भी किसी-न-किसी बात के लिए टोकती ही रहतीं और माँ-पिताजी चुप रहते। माँ तो प्रायः यह ही कह दिया करतीं-'बड़ी हैं, बहुत कुछ ठीक कहती हैं, सुन लो।'

बहुत दिनों से चिढ़े बैठे विश्वा और वसु को आज अच्छा मौका मिल गया था इसलिए उन्होनें मनमानी कर ही ली थी।

मम्मी-पापा के लौटने पर दोनों ने उन्हें कोई भनक तक न लगने दी। पिताजी प्रायः पूछते-'मौसी का कोई पत्र नहीं आया? बहुत दिनों से वे भी नहीं आयीं।'

विश्वा और बसु एक-दूसरे को देखकर हल्का-सा मुस्कराते और मन में कहते-'आयेंगी भी नहीं।'

कुछ दिन ऐसे ही बीत चले। एक दिन पिताजी कचहरी से लौटे तो बहुत हड़बड़ाए से थे। उन्होंने कहा कि अभी तुरंत मौसी के पास गाँव चलना है, बच्चों को भी साथ ले चलना है। उनके विस्तार से पूछने पर उन्होंने बताया कि कचहरी में गाँव से आया एक आदमी बता रहा था कि मौसी बहुत बीमार है।

'अरे हमारे पास कोई खबर भी नहीं भिजवायी।' मम्मी कह रही थीं।

'वह बता रहा था कि पत्र तो डाला था।' पिताजी ने कहा।

माता-पिता सोच रहे थे कि पत्र मिला नहीं होगा और बच्चे सोच रहे थे कि पूछे जाने पर वे स्पष्ट मना कर देंगे।

गाँव पहुँचे तो देखा कि दादी चारपाई से लग गयी हैं।उन्हें पीलिया हो गया है। गाँव में ठीक चिकित्सा नहीं मिल पा रही है। गाँव वाले झाड़-फूँक करा रहे हैं। दादी का स्वभाव और व्यवहार इतना अच्छा था कि पड़ौसी उनका सारा काम कर देते थे, सेवा सुश्रूषा भी कर रहे थे।

विश्वा-वसु और उनके माता-पिता को आया देख दादी की आँखों में चमक आ गयी। उन्होंने वसु को स्नेह से अपने पास बुलाया और तकिए की गिलाफ के अंदर से एक मुड़ा हुआ कागज निकाल कर उसके हाथ में रख दिया।

'अरे यह क्या है?' माँ और पिताजी एक साथ बोले।

पिताजी ने उस कागज को पढ़ा तो पाया कि मौसी के पास जो थोड़ी-सी जमीन का टुकड़ा था, वह उन्होंने वसु के नाम कर दिया है। फिर उन्होंने विश्वा को अपने पास बुलाया और अपने हाथ की सोने की चूड़ियाँ और जंजीर उसे पहना दीं। माँ बोली—'क्या करेगी' यह, छोटी है अभी तो?'

'इसके विवाह पर कुछ बनवा देना।' दादी कह रही थीं।

मैले कपड़े में बँधी एक पोटली उन्होंने वसु के पिताजी के हाथ पर रखते हुए कहा—'यह मेरे क्रिया-कर्म के लिए हैं।'

'अरे मौसी! यह तुम क्या कर रही हो और क्या कह रही हो। तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी, तुम्हें कुछ होने वाला नहीं।' पिताजी उनका सिर सहलाते हुए कह रहे थे।

मौसी के कोई बाल-बच्चा नहीं था और उनके पास जो कुछ था वह उन्होंने विश्वा-वसु को दे दिया था। वे दोनों अवाक्-अचल खड़े थे। दोनों को अपने पर ग्लानि हो रही थी। विश्वा सोच रही थी कि संभवत: दादी को पत्र नहीं मिला होगा, नहीं तो ऐसा वे कदापि न करतीं। पर यह उनका भ्रम था, जो जल्दी ही दूर हो गया। दूसरे ही दिन पिताजी ने उन्हें शहर ले चलने के लिए टैक्सी मँगवा ली थी। विश्वा और वसु दौड़-दौड़कर दादी का सामान टैक्सी में रख रहे थे, तभी उन्हें अपनी चिट्ठी मिल गयी थी। वसु ने वह चुपचाप मुट्ठी में भींच कर पैंट की जेब में रख ली। रास्ते में उसने वह चिट्ठी चुपचाप जेब में से निकाल कर

टैक्सी से बाहर फेंक दी। दादी की महानता के आगे वे स्वयं को बहुत ही क्षुद्र अनुभव कर रहा था।

शहर ले जाते ही दादी को अस्तपताल में भर्ती कराया गया। पंद्रह दिन तक उन्हें अस्पताल में रखा गया, तब कहीं जाकर उनकी स्थिति खतरे से बाहर हुई।

विश्वा और वसु जी-जान से दादी की सेवा में जुटे रहते। उन्हें अपने किए का बहुत पछतावा था। वे डर भी रहे थे कि कहीं दादी पिताजी से चिट्ठी की कोई चर्चा न कर दें। एक दिन मौका देखकर वसु बोला—'दादी! मेरी एक भूल के कारण तुम्हें इतनी लम्बी बीमारी भोगनी पड़ी है, मुझे माफ कर दो।'

दादी उसके सिर पर हाथ फिराने लगीं। वसु फिर आगे बोला—'दादी!' तुम तो बहुत अच्छी हो, पिताजी से मत कहना नहीं तो....... ।'

'नहीं रे' दादी ने स्नेह से देखते हुए उसे आश्वासन दिया। दादी के घर आने पर भी दोनों बच्चे उनकी सेवा में लगे रहते थे। उनके मन की घृणा प्रेम में बदल चुकी थी। वे प्राय: 'दादी माँ' की रट लगाए रहते थे। स्कूल से आने के बाद उनके साथ खेलते, बोलते। उनसे रात को कहानियाँ सुनते और अपनी किताबों से कहानी आदि पढ़कर सुनाते। दूरदर्शन पर कार्यक्रम आते तो वे दादी को भी अपने पास बैठा लेते और समझाते जाते। दादी भी उनके साथ बच्चा बन गयी थीं। वसु के माता-पिता बच्चों के इस परिवर्तन पर चकित थे और प्रसन्न भी।



बचत योजना

अवन्ति और कनु दोनों सहेलियाँ थीं। दोनों के घर पास–पास थे। बचपन से ही दोनों साथ–साथ पढ़ी और खेली थीं। उनकी बचपन की मित्रता अभी तक वैसी ही बनी हुई थी। पढ़ने में दोनों ही होशियार थीं, अतएव पढ़ाई–लिखाई में भी एक दूसरे का साथ देती थीं।

कनु थोड़ी अभिमानी और अहंकारी थी। वह खुले हाथ से पैसा खरच करती। अवन्ति और कनु के घर से जेब खर्च के लिए बराबर–बराबर पैसे मिलते थे। अवन्ति तो आधे पैसे खर्च करती और आधे बैंक में डाल देती थी। उसने बैंक में पासबुक खुलवा रखी थी। बैंक का अधिकारी प्रतिमास आकर बचत के रुपए ले जाता था। कनु अवन्ति की इस 'बचत योजना' का बड़ा मजाक बनाती। वह कहा करती कि रुपए हमें बचाने के लिए नहीं, आराम से रहने और खर्च करने के लिए मिलते हैं। वह प्रसाधन सामग्री, नये–नये वस्त्र, आभूषण आदि खरीदती रहती। फिर वह कॉलिज में नयी–नयी वस्तुओं का प्रदर्शन कर अपनी सहेलियों पर रौब डालती रहती। यही नहीं उनके चाय–पानी पर भी अक्सर खर्च कर देती। सब यही समझते थे कि वह बहुत संपन्न घर की लड़की है। समूह की छात्राएँ कनु के मुँह पर उसकी प्रशंसा करतीं, परंतु अवन्ति को उसकी यह फिजूलखर्ची बिलकुल भी अच्छी न लगती। उसकी ही भाँति कनु भी मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की है, यह भी वह जानती थी।

वह कनु को असमय के लिए कुछ संचय करने के लिए कहती, परंतु वह उल्टे उस पर ही व्यंग कसने लगती। इस पर भी अवन्ति उसे जब तब फिजूलखर्ची कम करने के लिए कहती ही रहती। इस बात को लेकर दोनों में कभी-कभी छोटी-मोटी झड़प भी हो जाया करती थी।

परीक्षाफल आया तो दोनों सहेलियाँ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गयीं। अवन्ति बहुत प्रसन्न थी और अच्छे कॉलेज में जाना चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि कनु भी उसी कॉलेज में जाए। कनु को भला इसमें क्या आपत्ति हो सकती है, उसने मन ही मन सोचा। वह प्रसन्नता से भरी कनु के घर गयी, जिससे उससे विचार करके जल्दी ही अच्छे कॉलेज में प्रवेश ले लें। विलम्ब करने से स्थान भर जाने का भय था। उसने अपने भाई से दो फार्म भी मँगवा लिए। सेठ मनोहरलाल कॉलेज नगर का सबसे अच्छा कॉलेज माना जाता था अतएव उसी के फार्म मँगाए थे।

अवन्ति ने कनु को बधाई दी और फार्म उसके आगे रख दिया। 'पिताजी से पूछकर जल्दी से इसे भर लो, कल हम दोनों ही प्रवेश लेने चलेंगे।' उसने उत्साह में भर कर कहा, पर कनु ने फार्म को हाथ भी न लगाया। वह गुमसुम-सी बैठी रही। अवन्ति ने अधिक आग्रह किया तो उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

'अरे क्या बात है ?' अवन्ति ने आश्चर्यचकित होकर कहा।

'इस वर्ष मैं पढ़ न पाऊँगी।' वह सिसकते हुए बोली।

'क्यों' अवन्ति पूछने लगी। उसकी समझ में कुछ बात न आ रही थी।

कनु ने रोते हुए दुःखी मन से बताया कि उसके पिताजी इस वर्ष कॉलेज में प्रवेश दिलाने के लिए मना कर रहे हैं। कारण

कि भाई का इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश होना है। इस सबके लिए कई हजार रुपए चाहिए। पिताजी कहते हैं कि उसके प्रवेश के लिए वे इस मास रुपए नहीं दे सकते। साथ ही दो-तीन महीने माँ तो घर का काम कर नहीं पाएँगी अतएव उसे घर का दायित्व भी संभालना है। यह सब बताते हुए कनु की हिचकियाँ बँध गयी थीं।

'अरे, बस इतनी-सी बात के लिए रो रही हो।' अवन्ति ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा।

'इसे तुम इतनी-सी बात कह रही हो, मुझे तो अपना भविष्य ही अंधकार सा दीखता है।' कनु कहने लगी।

'रोना बंद करो और मेरी बात ध्यान से सुनो। तुम तो जानती ही हो कि मैं बचपन से ही बचत खाते में हर मास कुछ न कुछ जमा करती आ रही हूँ। उसमें अब तक कई हजार रुपए जमा हो गए हैं। तुम बिलकुल भी चिंता न करो। जितने भी रुपए चाहिए और जब तक चाहिए, उसमें से ले लो। चाहो तो पूरे वर्ष लेती रहो। रुपए वापस करने की कोई जल्दी नहीं है, आराम से लौटा देना। रही माँ के ऑपरेशन के बाद घर का काम करने की बात। कितनी ही छात्राएँ ऐसी होती हैं, जिनकी माँ मर जाती हैं, तो वे घर का पूरा कार्य करके पढ़ने जाती हैं। तुम पिताजी को फीस, किताब आदि के खर्चे के विषय में भी समझा देना और यह भी बता देना कि घर का काम करने के बाद ही पढ़ने जाओगी। जब ऑपरेशन हो एक-डेढ़ महीने कॉलेज मत जाना। मैं तुम्हें घर पर ही सब बता दिया करूँगी।

कनु अवन्ति की आर्थिक सहायता लेने के लिए तैयार न थी, परंतु उसके बहुत समझाने पर अंत में उसे मानना ही पड़ा। अवन्ति के जाने पर उसे बहुत पश्चाताप हुआ। यदि वह भी उसकी बात

मानकर बचत खाते में कुछ जमा करती, तो आज किसी की मुखापेक्षी तो न होती।

पिताजी को कनु ने सारी बातें समझायीं और अंततः कॉलेज भेजने के लिए तैयार कर लिया। इस घटना ने उसका स्वभाव भी बदल दिया है। अब उसने फिजूलखर्ची बिलकुल बंद कर दी है। 'घर की स्थिति ठीक होने और जेब खर्च मिलने पर मैं भी कुछ न कुछ बचत करूँगी।' ऐसा उसका अब दृढ़ निश्चय है।



साहस भरा कदम

राजबाला तेजी से साइकिल के पैडल चलाए जा रही थी। तीन बजे प्रश्न–पत्र प्रारंभ होना था और केवल पंद्रह मिनट शेष बचे थे। 'ओह दस मिनट तो आज देर हो ही जाएगी।' घड़ी देखते हुए वह सोच रही थी। घड़ी कब बंद हो गयी यह पढ़ते–पढ़ते राजबाला को ध्यान ही न रहा था। इसी कारण यह मुसीबत आयी थी। उसका घर भी शहर से दूर एक गाँव में था। साइकिल से वह प्रतिदिन कॉलेज जाती थी। वहाँ पहुँचने में आधा घंटा तो लग ही जाता था।

राजबाला अपनी ही धुन में तेजी से बढ़ी जा रही थी। तेज लू के थपेड़े और चिलचिलाती धूप के कारण रास्ते पर कोई दिखाई न देता था। तभी उसकी दृष्टि बाँयी ओर मोड़ पर बैठी एक स्त्री पर पड़ी, जो हाथ हिलाकर उसे रोक रही थी 'मुझे वैसे ही देर हो रही है।' वह मन ही मन बोली। पास आने पर उसने कुछ ध्यान से महिला को देखा। खून की धार से वह नहायी थी और धोती का पल्लू नाक पर रखे बैठी थी। यह देखकर राजबाला से न रहा गया। वह तुरंत साइकिल से उतर पड़ी। उसने पास आकर देखा कि

महिला की नाक से निरंतर खून बह रहा है। राजबाला ने उसे लिटाया और पैर कुछ ऊपर किए, पास से मिट्टी खोदकर सुँघायी भी, पर खून था कि बंद होने का नाम ही न ले रहा था। गाढ़ा, लाल खून लगातार बह रहा था। राजबाला ने घड़ी की ओर देखा, सुइयाँ तेजी से दौड़ी चली जा रही थीं। 'हे भगवन्! उसके मुँह से निकला। उसके मन में आया कि तुरंत साइकिल पर चढ़े और चल दे। देर होने पर उसका पूरा वर्ष बेकार हो जाएगा, परंतु दूसरे ही पल कराहती, अचेत पड़ी असहाय महिला पर उसकी दृष्टि गयी तो उसके पैर ठिठक गए। खून अभी भी बहे जा रहा था। राजबाला बड़बड़ाने लगी, 'यदि जल्दी ही उपचार न मिला तो यह अभागी मर जाएगी।' उसके मन ने धिक्कारा—'क्या ऐसी स्थिति में भी मनुष्य, मनुष्य के काम न आएगा ? यदि इस स्थिति में तू पड़ी होती तो.....शरीर ही तो है, न जाने कब, कहाँ, क्या हो जाए...... ।'

बस, अब राजबाला ने तेजी से साइकिल आगे बढ़ायी और पास के मोड़ से आगे बढ़कर चौड़ी सड़क पर जाकर खड़ी हो गयी। वहाँ से यातायात आता-जाता रहता था। 'कुछ तो मिलेगा ही' मन ही मन सोच रही थी। पंद्रह-बीस मिनट बाद एक टैंपू उधर से गुजरा। राजबाला ने उसे रुकाया। कड़ी धूप के कारण अभी तक उसमें कोई सवारी नहीं थी। राज ने टैंपू वाले को जल्दी से महिला की पूरी बात बतायी और अनुरोध किया कि वह जल्दी से उसे टैंपू में डालकर अस्पताल ले चले। टैंपू चालक भी सहृदय था। वह राज के साथ टैंपू ले गया। दोनों ने मिलकर स्त्री को उसमें लिटाया। अपनी साइकिल राज ने पीछे रख ली।

'सरकारी अस्पताल में तो देर लगेगी और वह बंद भी हो गया होगा। मुझे तुरंत परीक्षा भवन पहुँचना है, देर हो चुकी है। इसे प्राइवेट नर्सिंग होम में ले चलो।' राज ने टैंपू वाले से कहा।

उसके कॉलेज से थोड़ी दूर पर ही एक नर्सिंग होम था। वहीं टैंपू रुकाया गया। उसके पास जितने रुपए थे, निकाल कर डॉक्टर को दे दिए। डॉक्टर को उसने महिला के विषय में पूरी बात बता दी। साथ ही अनुरोध किया वे उसे इस समय तो तुरंत जाने दें क्योंकि उसे परीक्षा भवन में पहुँचने में बहुत विलम्ब हो गया है। शाम को परीक्षा समाप्त करके आएगी। टैंपू चालक ने उसे कॉलेज पहुँचा दिया और आश्वासन दिया कि वह निश्चिंत रहे। जब तक महिला की स्थिति खतरे से बाहर नहीं होगी वह उसकी देखरेख करेगा।

कॉलेज के दरवाजे पर ही राजबाला को चपरासी ने रुका लिया। एक घंटा पूरा बीत चुका था। अंदर जाने की अनुमति नहीं थी। चपरासी किसी भी तरह घुसने ही नहीं देता था। अंत में राजबाला ने कहा—'मैं कॉलेज की ही छात्रा हूँ। मेरा वर्ष बेकार जाएगा।' चलो मुझे प्राचार्या के पास ले चलो।'

आखिर चपरासी उसे प्राचार्या के पास ले गया। उन्होंने राज की पूरी कहानी सुनकर गहरी दृष्टि से उसे ऊपर से नीचे तक देखा। उसके कपड़ों पर भी खून के छींटे थे। चेहरा तेज धूप के कारण तमतमा रहा था। उन्होंने उसे पास बैठाया, पानी पिलाया और पूछने लगीं—'पौने दो घंटे बचे हैं। इतने कम समय में काम करके क्या तुम उत्तीर्ण हो जाओगी ?'

'हाँ, मुझे पूरा विश्वास है कि मैं उत्तीर्ण हो जाऊँगी। कृपया आप मुझे तुरंत कॉपी और प्रश्न पत्र दिला दीजिए।' राजबाला कह रही थी।

प्राचार्या सोच में पड़ गयीं। शिक्षिकाओं ने बताया कि यह छात्रा पढ़ने में ठीक है। प्राचार्या ने अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करते हुए कहा—'ठीक है, अभी तो इसे कॉपी व प्रश्न पत्र दे ही दो।'

थोड़ी देर बाद चपरासी ने आकर बताया कि लड़की की बात सही है। वह नर्सिंग होम जाकर महिला को वहाँ भर्ती कराकर

आ रही है। डॉक्टर ने पूरी बात की पुष्टि कर दी है। 'बस ठीक है अब तो यह परीक्षा दे ही सकती है।' प्राचार्या ने कहा। स्वयं अपनी हानि सहकर भी दूसरों की भलाई करने वाली इस छात्रा पर उन्हें गर्व हो रहा था। साधारणतः मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि स्वयं को संकट में डालकर दूसरे की बात नहीं सोचता, परंतु जो अपना हित-अहित सोचे बिना दूसरे की सहायता की बात सोचता है वह निश्चित ही महान है, प्रशंसा का पात्र है।

परीक्षा समाप्त करके राजबाला फिर नर्सिंग होम गयी। वह महिला अब कुछ ठीक थी, उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे पूरी बता पता लग चुकी थी। राजबाला के आते ही उसने उसे गले से लगा लिया और बोली-'बेटी!' तेरे कारण ही आज मेरे प्राण बचे हैं, नहीं तो आज क्या से क्या हो गया होता। मेरे हृदय से तेरे लिए आशीष निकलते हैं।

परीक्षाफल आया तो द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। उस प्रश्न पत्र में भी उसे उत्तीर्ण अंक मिल गए थे।

राजबाला के इस साहस ने प्राचार्या को भी विचारमग्न कर दिया था। उन्होंने अपनी साथी शिक्षिकाओं से विचार विमर्श करके छात्राओं के मानवतावादी गुणों को प्रोत्साहित करने के लिए एक नए पुरस्कार की घोषणा की। कॉलेज के वार्षिकोत्सव में मुख्य अतिथि के सम्मुख राजबाला के इस त्याग भरे कार्य का वर्णन करते हुए उसे यह 'मानवता-पुरस्कार' दिया गया। वही छात्राएँ जो राजबाला के इस कार्य को 'मूर्खता' या 'भावावेश' कह रही थीं, आज उसके महत्त्व को स्वीकार कर रही थीं।

वह महिला भी राजबाला को बेटी की भाँति मानती और उसका सम्मान करती है। राजबाला उस परिवार की भी सदस्य जैसी बन गयी है। 

सूझबूझ और लगन

शिवप्रसाद मास्टर साहब की जब गाँव में नियुक्ति हुई तो उन्हें तनिक भी बुरा न लगा उल्टे अच्छा ही लगा कि कुछ सेवा करने का अवसर मिलेगा। वे यह भलीभाँति जानते थे कि भारत की अधिकांश जनता गाँवों में बसती है। उसे शिक्षित, साक्षर और संस्कारी बनाना देश की बहुत बड़ी सेवा है।

गाँव में वे बहुत कुछ करने की कामना लेकर आए थे। गाँव वालों को प्रायः यह शिकायत होती है कि जो मास्टर वहाँ आते हैं, वे बच्चों को ठीक से पढ़ाते नहीं हैं, अधिकतर छुट्टी पर रहते हैं। पर इस गाँव में स्थिति यह है कि अधिकांश पिता अपने बच्चों को पढ़ाना ही न चाहते थे। इसका प्रमुख कारण था–गरीबी। छोटे–छोटे बच्चों को काम पर लगा दिया जाता, जिससे घर को थोड़ा–बहुत पैसा मिल जाता। उनके पढ़ने–लिखने की बात को कोई महत्त्व न देता।

मास्टर साहब के सामने कई समस्याएँ थीं, अनेक चुनौतियाँ थीं, पर वे हार मानने वाले न थे। बच्चों को विकसित न होने देने वाली मूल जड़ कहाँ है ? उसे वे अच्छी तरह समझ गए थे। जब तक प्रौढ़ों के विचारों में परिवर्तन न किया जाएगा, उन्हें शिक्षा का महत्त्व न समझाया जाएगा, अपने बच्चों को भी वे इस ओर प्रेरित नहीं करेंगे। यह बात उनके सामने स्पष्ट हो गयी थी।

उन्होंने सरकारी सूत्रों से संपर्क किया और विद्यालय में शाम के समय एक घंटे के लिए प्रौढ़ पाठशाला खोल ली। यह वह समय था, जब गाँव के युवक बूढ़े सभी फालतू रहते थे। कुछ इधर–उधर घूमते

थे, तो कुछ चौपाल पर गपशप करते थे। मास्टर साहब स्वयं चार-पाँच युवकों को बड़े आग्रह से विद्यालय में स्वयं बुला कर लाए। उनका मन तो नहीं था इस नीरस काम में लगने का पर वे मास्टर साहब का आदर करते थे, केवल इसीलिए विद्यालय में आकर बैठ गए थे। मास्टर जी उन्हें समझा रहे थे कि यदि थोड़ा-बहुत पढ़-लिख जाओगे, तो अपने आप चिट्ठी लिख-पढ़ सकोगे, अखबार पढ़ सकोगे, खेती के बारे में नयी-नयी जानकारी ले सकोगे। बात एक-दो की समझ में आ भी गई। उन्होंने अपने साथियों को भी समझाया कि शाम का समय नष्ट करने की अपेक्षा एक घंटा स्कूल में आकर पढ़ लिया जाए तो उससे लाभ ही होगा। 'चलो थोड़े दिन ऐसा ही करके देखते हैं। कुछ लाभ होगा, तो आएँगे, नहीं तो किसी की कोई जोर-जबरदस्ती नहीं।' साथियों ने कहा। इस प्रकार मास्टर साहब की प्रौढ़ पाठशाला में पाँच-सात व्यक्ति रात्रि में आने लगे। मास्टर साहब उन्हें केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं कराते थे अपितु अनेक व्यावहारिक जानकारियाँ भी पुस्तकों से पढ़कर सुनाते, जैसे गाँव में फैली बीमारियों से कैसे बचा जाए, सरकार किसानों की क्या-क्या सहायता करती है, स्वस्थ कैसे रहा जा सकता है आदि आदि। सभी को लगता कि किताबों में तो बड़ी उपयोगी बातें लिखी रहती हैं। अधिकांश गाँव वाले सोचते थे कि नौकरी करने के लिए ही पढ़ाई की जरूरत है, पर यह उनका भ्रम सिद्ध हुआ था। अब वे दूसरों को भी इस ओर प्रोत्साहित करने लगे। धीरे-धीरे शिक्षार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। अब वे अपने बच्चों को पढ़ाने के भी उतने विरुद्ध न रहे थे।

मास्टर साहब गाँव की समस्या जानते थे। उन्होंने एक काम और किया। स्कूली पढ़ाई के बाद वे एक घंटा बच्चों को रुकाए रखते। इस घंटे में वे छोटे-छोटे ऐसे काम बच्चों से कराते जिससे उन्हें कुछ

पैसे भी मिल सकें। गाँव का बनिया हर सप्ताह शहर का चक्कर लगाता था। उससे उन्होंने रद्दी अखबार मंगा लिए थे। बच्चे उनके थैले बना देते। बनिया जब शहर जाता, तो उन्हें बेच आता। जो पैसे आते वह अपने-अपने काम के हिसाब से सभी बच्चों को लागत निकालकर दे दिए जाते। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी काम प्रारंभ करा दिए। सूत की पट्टी, टोकरी, मूँज के आसन, ढाक के पत्तों के दोने-पत्तल आदि काम बच्चे बड़ी कुशलता से करने लगे। गाँव से कोई न कोई तो शहर जाता ही था। मास्टर जी उसी से कहकर उन्हें शहर भेज कर बिकवा दिया करते। इससे बच्चे महीने में कुछ रुपए तो कमा ही लेते थे। इस पर भी यदि कोई अभिभावक अपने बच्चे की पढ़ाई रुकवाता तो मास्टर जी उसके घर जाकर उसे समझाते कि इस समय यह भले ही तुम्हें कम पैसे लाकर दे रहा है, परंतु बड़ा होकर पत्र लिख कर तुम्हें सुख देगा। अपने बच्चे के भविष्य पर कुल्हाड़ी न मारो। किताब कापी आदि सभी तो स्कूल से दी जाती है। क्यों अपने बच्चे को इससे वंचित रखकर उसे भी अपने जैसा ही बनाना चाहते हो। मास्टर जी के बार-बार समझाने का फल यह होता कि वह व्यक्ति बालक के कमाए थोड़े पैसों पर ही संतोष करता और उसे स्कूल भेज ही देता। मास्टर जी के प्रयासों से अभिभावकों के मन में यह भाव जग गया कि हम भले ही भूखे रह लेंगे, पर अपने बच्चों को शिक्षित अवश्य बनाएँगे।

सच्ची लगन और निष्ठा से किए गए काम में कभी न कभी निश्चित रूप से सफलता मिलती है। मास्टर साहब को भी प्रयासों में सफलता मिली। न केवल बालकों में अपितु बड़ों में भी पढ़ने की लगन जग चुकी थी। बहुत से नियमित रूप से विद्यालय में आने लगे थे। मास्टर साहब न केवल उन्हें साक्षर बना रहे थे, अपितु अच्छे संस्कार भी दे रहे थे। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज

निर्माण यह उनकी शिक्षा के तीन लक्ष्य थे। इस कार्य में सबसे बड़ा सहयोग उनके विद्यालय की बालक सेना दे रही थी। पूरे गाँव की सफाई करना, बरसात में गड्ढे भरना आदि अनेक कार्य वह करती थी। गाँव की दीवारों पर उन्होंने सुंदर सद्विचार लिख दिए थे, जो आने-जाने वालों को प्रेरणा दिया करते थे। मास्टर साहब के संकल्प एवं अध्यवसाय ने गाँव को प्रगति की सही दिशा दे दी थी। मास्टर साहब ने एक समिति भी बना ली 'ग्राम विकास समिति'। इसमें गाँव के बड़े-बूढे और मुखिया तो थे ही, उसमें नवयुवकों को भी साथ में लिया गया था। मास्टर जी को गाँव का हर व्यक्ति अपना हितैषी मानने लगा था। वह जो भी कहते, वे सब वैसा करने में जुट जाते। देखते-देखते गाँव में विकास समिति ने गाँव की सीमा पर स्कूल के लिए पक्की इमारत बना ली। इसमें नया गठित 'युवक दल' प्रातः व्यायाम करता। दोपहर में बच्चों का जूनियर हाईस्कूल चलता था। दोपहर से शाम तक तरह-तरह के कुटीर उद्योग के काम होते। रात्रि भोजन के बाद कुछ भजन, कथा-कीर्तन होता और प्रौढ़ पाठशाला चलती। पाँच ही वर्ष में 'युवक दल' ने गाँव से कीचड़ और कचरे को खदेड़ दिया। गाँव की गलियाँ उभरी और साफ-सुथरी बन गयीं। खेतों के पास कूड़ा घर और कम्पोस्ट के गड्ढे बन गए। घरों को साफ-सुथरा एवं लिपा-पुता रखने की होड़-सी लग गयी। स्कूल में निरीक्षण के लिए आए निरीक्षक विद्यालय के वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मास्टर जी को स्कूल में वार्षिकोत्सव मनाने का सुझाव दिया। इसमें अध्यक्ष पद के लिए वे जिलाधीश को लाए। जिलाधीश गाँव को देखकर हर्ष विभोर हो उठे। उन्होंने स्वयं तो प्रशंसा की ही साथ ही अपनी रिपोर्ट भी सरकार में इस प्रकार से प्रस्तुत की कि सरकार ने वह गाँव आदर्श गाँव योजना में ले लिया। सरकार की ओर से सभी विभागों-व्यायामशाला, कुटीर उद्योग,

प्रौढ़शाला आदि के लिए भरपूर सहायता भी दी जाने लगी। मास्टर जी की भी पदोन्नति हो गयी। उनके लिए निरीक्षक पद पर नगर में में आने का आदेश आया, तो सभी गाँव वालों की आँखों में आँसू आ गए। मास्टर जी स्वयं भी उनसे बहुत जुड़ गए थे। जब सभी ने उनसे न जाने का घोर आग्रह किया, तो वे भी उसे ठुकरा न सके। वे स्थायी रूप से उसी गाँव में रहने का आदेश प्राप्त कर वहीं रह गए। वह गाँव दूसरों के लिए प्रेरक उदाहरण बना हुआ है। मास्टर जी जैसी सूझबूझ वाले और लगनशील कार्यकर्त्ता यदि गाँव वालों में हो जाएँ, तो देश का कायाकल्प होते देर न लगे। गाँवों की प्रगति से ही देश की सच्ची 'प्रगति संभव है।'



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा